कविवर बच्चन

दो शब्द

प्रो दशरथ राज, आर्टस्, सायन्स व कॉमर्स कॉलेज, धुलिया (महाराष्ट्र) मे हिंदी विभागके अध्यक्ष हैं। प्राचीन साहित्यके प्रकाड विद्वान् होनेके साथ ही आधुनिक हिंदी साहित्यसे भी आपको विशेष अनुराग है। आपने बच्चनजीके काव्य-साहित्यका मथन कर उसपर प्रस्तुत ग्रथ-मे अपने मौलिक विचार प्रकट किये हैं। प्रारभमे हालावादका आविर्भाव एव विकास शीर्षक ५६ पृष्ठोके निबधमे हालावादपर विस्तृत एव शोधपूर्ण विवेचन कर उमर खैयामके काव्य तथा उसके अनुवादकोंके कृतित्वपर पर्याप्त प्रकाश डाला है जिससे प्रस्तुत ग्रथकी महत्ता और भी बढ गयी है। 'बच्चन-व्यक्तित्व एव रचनाएँ' शीर्षक लबे निबधमे प्रो दशरथ राजने कविकी रचनाओपर अत्यत सतुलित दृष्टिसे विचार किया है और बच्चनके अनुभव प्रौढ व्यक्तित्वकी परिणति किस प्रकार उसकी रचनाओमे हुई है इसका गभीर अनुशीलन किया है। समय-समयपर आलोचकोंने अपने पूर्वग्रहोंके कारण बच्चनकी प्रतिभापर जो अनर्गल प्रहार किये हैं उनका समाधान भी सिद्ध आलोचकने बडी ही तत्परता एव कुशलतासे किया है। अपने युगके प्रभावोका आत्मसात कर कविकी अनुभूति किस प्रकार व्यापक होकर मानव-कल्याणके नवीन क्षितिजोकी ओर अग्रसर हुई तथा गीति-काव्यके सोपानोपर बढता हुआ कवि किस प्रकार मानव प्रगतिके लोकोत्तर लक्ष्यको प्राप्त कर सका इसका दिग्दर्शन भी विद्वान् लेखकने बडी योग्यतासे कराया है।

इस ग्रथके अतिम निबध 'काव्य सिद्धात' मे कविके काव्यसे प्रभूत उद्धरणोकी सहायतासे उसके काव्य-विषयक सिद्धातोका विवेचन कर बच्चनके गीति माधुर्य एव भावपूर्ण काव्यका मूल्याकन किया गया है। इस प्रकार प्रो दशरथ राज बच्चनके व्यक्तित्व, कृतित्व तथा काव्य-कला पर अनेक दृष्टिकोणोंसे प्रकाश डालकर पाठकोकी आँखोंके सम्मुख

उसका एक सजीव चित्र उपस्थित करनेमें सफल हुए हैं। बच्चनका व्यक्तित्व अपने ही में पूर्ण एक रस-लोक है। उसकी अनुभूति प्रौढ़ काव्य चेतनाका अभी पूर्ण रूपसे उद्घाटन नहीं हुआ है। भविष्यमें बच्चनके कृतित्वकी महत्ताकी ओर काव्य-प्रेमियोंका ध्यान जाएगा। उसका कवि इतना लोकप्रिय हो गया है कि उसके काव्यके सम्मोहनका विश्लेषण कर उसके भीतर अंतर्हित कविके समर्थ व्यक्तित्व, श्रद्धा-आस्थापूर्ण हृदय तथा उसका जीवन विश्वास एवं मानव कल्याणके भावना-मूलक उपादानोंके प्रति लोगोंको गंभीरतापूर्वक विचार करनेका अवकाश ही नहीं मिला है।

प्रो दशरथ राजने इस ओर प्रथम सफल प्रयत्न कर हिंदी प्रेमियोंको अपनी कृतज्ञताके पाशमें बांध लिया है। मैं उन्हें उनके मनन, मथन, विवेचन तथा शोधके लिए बधाई देता हूँ। लेखककी शैली संयत तथा गंभीर होनेपर भी सरल एवं सुबोध है। कविके प्रति अनन्य आस्था उसके महान् काव्यको समझनेके लिए लेखककी पथ प्रदर्शिका बन सकी है। प्रो दशरथ राजकी श्रद्धामें गवेषणाके भी तत्त्व मिले हुए हैं, जिससे उनके निबंधोंकी उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। मुझे विश्वास है, हिंदीमें इस पुस्तकका स्वागत ही नहीं होगा, उसको यथोचित सम्मान भी प्राप्त हो सकेगा। मैं स्वयं लेखककी कृतिका हार्दिक अभिवादन करता हूँ।

(सुमित्रानंदन पंत)

प्राक्कथन

डॉ. श्री हरवंशराय 'बच्चन' आधुनिक हिंदीके अत्यत लोकप्रिय कवियोमे हैं। मैं समझता हूँ कि सन् १९३५ से ४५ तक प्रायः कवि-समेलनोंमे उनकी कविताकी धूम रहती थी और हजारो व्यक्ति उनके मखसे उनकी कविता सुननेको एकत्रित हो उत्कर्ण रहते थे। उस समय विशेष रूपसे उनकी लोकप्रियताके दो कारण थे–एक, उनका हालावाद और दूसरा, उनके सुनानेका ढग। उनकी कविताकी दोनो ही बातें बडी सक्रामक सिद्ध हुईं और धीरे-धीरे हालावादका व्यापक प्रचार हुआ। बच्चनकी शैलीको अपनाकर अनेक नवोदित कवियोंने अपने कविता-पाठके ढग विकसित किये और उस शैलीकी काफी धूम रही।

इतना ही नही, उमरखैयाम और 'बच्चन' के हालावादके प्रभावको लेकर कवितामे एक खास मौज-मस्तीकी प्रवृत्ति जागृत हुई। यह छायावादोत्तर स्वच्छदतावादी हिंदी कविताका एक मादक मनोमोहक रूप था जिसका अपने ढगसे स्वागत हुआ। जहाँ तक स्वच्छदतावादका प्रश्न है, इस प्रवृत्तिमे छायावादकी विशेषताओका विकास हुआ, पर इन नयी स्वच्छदतावादी धारामे अस्पष्टता एव अतिशय काल्पनिकताके स्थानपर सीधी सहज आत्माभिव्यक्ति विकसित हुई। प्रगीत (Lyrical) काव्यके तत्त्व इसमे बडे स्वाभाविक रूपमें प्रकट हुए और ऐसा लगा कि कवि जीवनसे दूर न होकर उसके काफी निकट है। इस धाराकी कवितामे एक अहका स्वाभिमान, एक मस्ती, एक फक्कडपन था। कहना चाहिए कि इस धाराके कवियोमे एक धुन, एक मौज अथवा दीवानापन मिलता है। इस धाराके कविका व्यक्तित्व चिताग्रस्त, उलझनपूर्ण, अभाव-निर्धनताके शिकार व्यक्तिका न होकर किसी भी परिस्थितिमें कुछ करने और अपनेमे मस्त रहनेवाले साधकका व्यक्तित्व है। इस व्यक्तित्वकी अभिव्यक्ति हमे नवीनकी 'ठाठ फकीराना है अपना', भगवतीचरण वर्माकी 'हम दीवानोकी क्या हस्ती है आज यहाँ कल वहाँ चले' जैसी पक्तियोंमे 'मस्तीका

आलम ' के रूपमे प्राप्त होती है । मैं तो यही कहूँगा कि 'हालावाद', जो 'बच्चन' में प्रतीकात्मक रूपमे प्रकट हुआ है, इस प्रवृत्तिका केवल एक रूप था । वास्तवमें वह खुला स्वच्छदतावाद था, जो छायावादी सयमको तोडकर इन मचले पर जागरूक कवियोंकी वाणियोमे वह निकला । इस स्वच्छदतावादपर समकालीन राजनीतिक आंदोलनका भी प्रभाव पडा था । जहाँ एक ओर ये कवि 'मस्तीका आलम साथ लिये' चल रहे थे, वही दूसरी ओर 'बज रहा बिगुल सज रहे लोग, मिटने मचले जवान चलो' की पुकार भी कम आवेगपूर्ण नहीं थी और कहा जा सकता है कि स्वच्छदतावादकी इस अकिंचन किंतु मौनभरी वाणीने उस समयके लोगोंमे एक अजीब मस्तीकी चेतना जाग्रत की । इसने एक दृष्टिकोण विकसित किया जिसमे निश्चितता, परिणामकी उपेक्षा नियतिकी अवहेलना त्याग बलिदानकी प्ररणा और कष्टमे भी आनद पानेकी विशेषता देखनेको मिलती है । अत इस स्वच्छदतावादमे जो मादकता थी वह सौंदय अध्यात्म और देशप्रम—तीनों प्रकारके नशोंके रूपमें प्रकट होती थी । इस मादकताने वातावरणमे एक निर्भीकता एव निःस्पृहताकी सष्टि की जो उस समयकी एक तीव्र आवश्यकता थी ।

आधुनिक हिंदी कविताकी इस छायावादोत्तर स्वछदतावादी धाराका अधिक अध्ययन नही किया गया है परतु इसम अनेक कवि और उनकी अनेक कविताए एसी है जिनमे जीवनकी गतिविधि और भावोंकी जीवत ऊष्मा मिलती है जिनमे शब्दोंका आडबर नही, जिनकी रचना मस्तिष्कको कुरेदकर नही की गयी और बिंबोंको गढ छीलकर प्रस्तुत नही किया गया वरन् वह कविता हृदयके अतसमे भावोंके प्रबल उसके खुल जानेके कारण सहज रूपसे इठलाती, बल खाती सरिताके रूपमे वह निकली है । उसकी धारको कृत्रिम माग बनाकर आगे बढानेका प्रयत्न नही किया गया । इस प्रकारकी कवितामे जो कुछ है सब खुला है स्पष्ट है । उसकी गूढ व्याख्याकी आवश्यकता नही पर उसमे व्याप्त आवेग, आवेश खीझ, मस्ती ललकार, पुकार, पीडा क्षोभका ममस्पर्शी प्रभाव सहज ही पाठकों और श्रोताओंपर पडता है ।

इसी सहज स्वच्छंदतावादी धाराके एक समर्थ गायक 'बच्चन' भी हैं जिनकी रचनाओंमें कहीं यदि 'हालावाद' की मादकता है तो कहीं जीवनकी सुषमा और शोभाकी मस्ती और कहीं राष्ट्रीयता और देशप्रेमकी ललकार और पुकार है। पर इन अनेक प्रवृत्तियोंमें अत्यंत सहज एवं सुष्ठु रूप, कुछ लोगोंके विचारसे उनके हालावादका है; अतः बच्चनको 'हालावाद' का कवि माना जाता है, पर यह हालावाद अपने उदात्त, व्यापक और प्रतीकात्मक अर्थमें ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

कविवर 'बच्चन' के काव्यका अध्ययन इस विशेषताके विश्लेषणके साथ प्रस्तुत कृतिमें किया गया है। इस कृतिके रचयिता श्री. दशरथ राजने इस धाराका यथोचित विवेचन किया है; क्योंकि वे उर्दू और फारसी काव्यके भी मर्मज्ञ हैं। उन्होंने बच्चनके काव्यपर लगनेवाले आरोपोंका भी नम्रतापूर्वक किंतु तर्कसंगत खंडन कर उसे एक वास्तविक दृष्टिसे देखा है। अतः उनका यह अध्ययन बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा ऐसा मेरा विश्वास है। यदि इसमें 'बच्चनकी विचारधारा' शीर्षक एक अध्याय और जोड़ दिया जाता, तो पुस्तक अधिक उपादेय हो जाती। श्री दशरथ राजजीकी प्रकाशित यह प्रथम काव्य समीक्षा-कृति है और मुझे विश्वास है कि भविष्यमें और भी कृतियाँ उनकी लेखनीसे प्रकट होंगी। मुझे आशा है कि हिंदी संसारमें इस कृतिका समुचित स्वागत होगा।

पूना विश्वविद्यालय, पूना
१ जनवरी १९६३

— डॉ. भगीरथ मिश्र

अपनी बात

उमर ख़ैयामकी ओर मेरी उत्कंठा सन १९४२ के आरंभिक दिनोंमें जगी थी, जिसे मैं उन दिनों पूरा करनेमें असमर्थ रहा था और आज भी मेरी पिपासा परितृप्त हुई है, यह मैं कैसे मानूँ? और मैं तो इस क्षेत्रमें तृप्तिकी भावनाको प्रवंचना–आत्मवंचना मानता हूँ, जहाँ हम विवश होकर मान लेते हैं कि हमारी पिपासा शांत हो चुकी है पर वास्तविकता तो कुछ और ही होती है। यदा कदा अवसर आनेपर मैं इस पिपासाको लिए दौड़ता जरूर रहा हूँ पर फारसीका ज्ञान कम होनेके कारण भी मेरा पथ अवरुद्ध ही रहा है। फिट्जजेरल्डने मेरी कुछ सहायता की, पर अध्ययनने यह भी बताया कि ख़ैयामको ख़ैयामके माध्यमसे ही देखना अभिष्ट होगा। अस्तु।

हिन्दीसे परिचय स्थापित होनेपर कविवर बच्चनजीको भी जाना, पहचाना। पर उनके प्रति मेरे आकर्षणका कारण भी सर्वप्रथम ख़याम ही रहे हैं। अन्य कवियोंकी मौलिक एवं अनूदित रचनाएँ भी देखीं, पर बच्चनजीको उनसे भिन्न पाया। कारण शायद यही था कि वे अपनेको उमर ख़यामसे अभिन्न महसूस करने लगे थे, जैसा कि, फिट्जजेरल्डने किया था, और तादात्म्यके कारण ही, वे फारसी शराबको अँग्रेजी बोतलमें उतारनेमें सफल हो सके थे और बच्चनजीकी भी बात यही थी।

बच्चनजीको तबसे कई बार पढ़ा है, अब भी पढ़ता रहा हूँ, आलोचकके नाते नहीं, एक साधारण काव्य-रसिक पाठककी हैसियतसे। कविवर की गयी कटु–कठोर आलोचनाओंसे अपरिचित नहीं हूँ, जिन्होंने मुझे दुख ही पहुँचाया है, वे आलोचनाएँ पक्षमय होनेके कारण आलोचनाके आसनको कहाँ तक शोभन बना सकी हैं– यह मैं क्या कहूँ?

वास्तवमें मैं कविता और पाठकके बीचमें कविके अस्तित्वको भी श्रेयस्कर नहीं मानता, फिर मेरा बीचमें आना कहाँतक उचित है? मैं एक युगसे सोच रहा हूँ कि, किसी तरह हो सके तो मैं कविको ख़ैयामके तथा उसके निजी

आलोकमें प्रस्तुत कर सकूँ जिससे बीचके वे समीक्षक हट जाएँ और पाठक कविको, खैयामको उनके निजी आलोकमें देख सकें, पर यह काम इतना सरल तो न था। आज दुःसाहस करके सामने आ ही गया हूँ। मनका तोष तो इतनेसे नहीं होता, कि, अब भी, इसमें कमसे कम ४०० पृष्ठ बढानेकी इच्छा बनी हुई है, जिसका कच्चा ढाँचा अब भी बना हुआ है, पर अबकी वह संभव नहीं रहा। देखें उसका कब अवसर मिलता है, पर इसे अधूरा नहीं छोड़ूँगा।

कविवर बच्चनजीका काव्य-जीवन इतना व्यापक और विस्तीर्ण है कि उसे इतनी छोटी-सी रचनामें आबद्ध करना नितान्त असम्भव है। बस, मैंने मात्र उनको वास्तविक रूपमें प्रक्षिप्त (Project) करनेका प्रयत्न किया है, अपनेको निष्पक्ष रखते हुए, उदारताको नहीं छोडा।

मै प्रो. अमानत शेखका आभारी हूँ जिनसे वक्त-वक्तपर मैंने फारसी उद्धरणोंके विषयमें एवं उनके शुद्ध स्वरूपके विषयमें परामर्श किया। मैं पूज्य गुरुवर्य डॉ. भगीरथ मिश्रजीका भी आभारी हूँ जिन्होंने अपने व्यस्त समयसे कुछ अवकाश निकालकर इस रचनाकी भूमिका लिखकर इसकी शोभा बढायी है। कविवर सुमित्रानंदन पंतजीने इसके लिए दो शब्द लिखनेका कष्ट लिया है, मैं उनका भी उपकृत हूँ।

प्रयत्नोंमें त्रुटियाँ रहना सहज स्वाभाविक है, और यह मानवीय गुण भी है। उससे बडी बात है— आगे बढकर उन त्रुटियोंको स्वीकारना और सुधारनेके लिए प्रस्तुत रहना। सहृदय पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे उन त्रुटियोंको सुधारनेमें मेरी सहायता करें और मैं इसीलिए खड़ा रहा कि भूल तुम सुधार लो।

विनीत,
दशरथ राज

अनुक्रमणिका

: १ : हालावादका आविर्भाव एवं विकास

ईरानकी राजनैतिक सामाजिक परिस्थिति एव हालावादका बीजारोपण

हिंदी साहित्यमे हालावादका आविर्भाव खैयामकी रुबाइयोंके अँग्रेजी अनुवादोंके अनुवादके रूपमे हुआ। अत हिंदी साहित्यमे इस धाराका मूल्याकन करनेके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि जिस विभूतिके वैभवपर मुग्ध होकर पश्चिम झूमकर उस धारामे अपनेको खो बैठा था, उसके मूल उत्स एव उस समयकी ईरानकी परिस्थितियोका अध्ययन किया जाए ताकि हम भारतमे उस धाराकी उपयोगिता-अनुपयोगिता सिद्ध कर सके। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम ईरानके कवियोमे, विशेष रूपसे खुमरियात (मादकतावाद) के कवियोमे अपने कवि खैयामका स्थान निर्धारित करते हुए उनके दार्शनिक विचारोका अवलोकन करे, उनकी काव्य-गत विशेषताओका मूल्याकन करे और देखें कि हिंदी-साहित्यमे उसका कितना अनुकरण है, कितनी मौलिकता है। देखें कि वह धारा, भारतकी विचारधारासे मेल खाती है या नही और देखें कि उस धाराका ह्रास किस कारण हुआ, वह अधिक युग तक जीवित क्यो नही रह सकी।

जब अरब विजेताओंने इस्लामका प्रसार करनेके लिए तलवारको अपना माध्यम बनाकर राज्य-विस्तार-कार्य आरभ किया, तब ईरान भी पदाक्रात होनेसे बचा न रह सका। पैगबर मुहम्मदके मौलिक गुणोके अनुकरण करनेमे असमर्थ इस्लामधर्मके प्रचारकोने बाह्याचरण पर विशेष जोर दिया, जिससे वे अपनेको पैगबरका अनुयायी सिद्ध कर सके और अपनी वासनाओंपर आवरण डाले रह

सब। वे दिनको तो अपनेको अत्यत पाक-पवित्र आचरण करनेवाले सिद्ध करते और रातोंमें अपनी महफ़िलें शराब और शबावस सँवारते सिंगारते। अपने इस वास्तविक रूपको छिपाये रखनेके लिए वे प्रदर्शन प्रवृत्तिके अवरुद्धी बने और थोडी-सी गल्तीपर भी लोगोको बडी-से बडी सजाएँ देते ताकि उनकी पवित्रताका सिक्का सवसाधारण पर जम सके। इस समय इस्लामी राज्य केवल एक सत्ता या एक बादशाहके अधीन नहीं रह गया था, पर अन्यान्य स्थानोंपर स्थानीय राज्य-व्यवस्थाका प्रबध किया गया था और यह प्रबध स्थानीय काज़ी धर्मरक्षकके हाथोंमें रहता जो बाहरसे शरीयतके कट्टर पाबद दिखायी देते पर छिपकर जीवनके सारे उपभोग करते। वे केवल अपनको ही शराब एव शबाबका अधिकारी सा मानते एव किसी अन्यको उस अधिकारका उपभोग करते न तो उनसे देखा जाता न सुना। स्वय हमारे कवि खैयाम ही गलतफ़हमीके शिकार बनकर कैदकी कठोरताओंसे अवगत हो चुके थे। उनपर भी शराब एव शबाबके उपभोगका दोष लगाया गया था और उन्हे मस्तीमें सुल्तान पाकर कैद किया गया था पर वे बुखाराके कैदमे कुछ दिन रहकर भी अपनी मस्तीके मालिक बने रहे और वैसे ही एकातमे सौंदर्यकी उपासना-सी करते दिखायी पडे और आखिर निर्दोष घोषित होकर मुक्ति पा सके। इस्लाम धर्मको अपनानेवाले लोगोको शरीयतकी कठोर पाबदियोंमें साँस लेना कष्टप्रद हो उठा, पर कोई चारा ही न था। इस्लाम धमकी कट्टरताओं और कठमुल्लावादके विरुद्ध ईरानके सूफ़िया एव सतोंने विद्रोह कर ही लिया। उन्होने अपनी मस्ती स्वच्छदता और अपने मनकी तरगोको अत्यत भावुकता तथा प्रभावोत्पादक ढगसे प्रतीक-वादी पद्धतिमें प्रकट किया। उन्होंने शरीयत एव तरीक़तसे ऊपर अपनी सरस सहृदयता मस्ती और मौजको प्रतिष्ठापित करते हुए प्रतीक विधाना द्वारा अद्वैतवाद, ब्रह्मके साथ अपनी तदाकारता उपनिषदोंके 'अह ब्रह्मास्मि' भावनासे प्रभावित 'अनलहक' का उद्घोष किया। डॉ सर जीवाजी जमशदजी मोदी "मौलाना शिवली एव उमर खैयाम" की भूमिकामें कहते हैं कि, उस समय निशापुर,

और ईरानमे प्रत्येक व्यक्ति अगर शराब पीता न था, तो शराबकी बात जरूर करता था, जैसे वह उस वातावरणका अटूट अग बन गयी हो और लोग शराब और प्यालेका प्रयोग उपमाओके रूपमे भी करते थे।

हालावादके प्रथम कवि

बनी उमीयके दरबारमे कुछ अरब ईसाई शायर भी थे। उनमे प्रसिद्ध अखतल थे। वे शराब पीते भी थे और शराबपर कविता भी करते थे। बनू अब्बासका दौर आया तो यह रग और भी तेज हो गया और विशेषताके साथ हारून अल रशीदके दरबारी कवि अबू नवास' ने खुमरियात (मादकता) की बुनियाद डाली। उनके खुमरिया (मादक) शेर आजतक वही असर रखते हैं। फारसी उसी युगमे पैदा हुई इसलिए हम कह सकते है कि उसे तो बचपनमे ही शराब गले लगी थी इसलिए शायद आज तक फारसी शायरीपर उसका नशा तारी है, भले ही धीरे धीरे वह शराब मारिफतकी शराब बन गयी हो या शराबे मुहब्बत बन गयी हो और कभी देशप्रमकी शराब बनी हो और वे लोग जिन्होंने शराब कभी छुई तक नही, वे भी जब शेरो शायरी करते, तो उनकी जबानपर अनायास ही शराब-का नाम आ जाता। हम जानते है कि कविताके लिए प्रतिभा एव व्युत्पत्ति दो अनिवार्य गुण माने जाते हैं। व्युत्पत्तिमे तीन गुण माने जाते हैं—अध्ययन, लोकदशन और प्रकृति-दशन। अत आरभसे पड हुए प्रभावके कारण उन लोगोका यह मत-सा बन गया था कि शराबके अतिरिक्त कविता हो ही नही सकती और इस तरह शराब मानो उस युगकी कविताके प्राण बन गयी।

पश्चिमके विद्वानाने खैयामको ही इस धाराका आदि कवि माना है पर उपरोक्त तथ्यसे इसका निराकरण हो जाता है। इतना ही नही, अबू सेना (Avicenna) ईरानका प्रसिद्ध दार्शनिक खैयामसे केवल एक शताब्दि पूर्व ही निधनको प्राप्त हुआ था, जिसने कट्टर धर्मी सिद्धातवादियोका विरोध किया था और स्वय शराब आदि वस्तुओके उपभोगमे विश्वास रखता था, और शरीर यात्राको बुरा मानता

था। उसका स्वर्ग अथवा मिलनेके बारेमे सिद्धात भी नव अफलातूनी मतके सिद्धातानुरूप यही था कि, 'बुद्धिके द्वारा ही उसे पाया जा सकता है। आरबेरीने अपनी पुस्तक 'उमर खैयाम' के पृष्ठ २९ पर इस बातका समर्थन किया है।[1]

किंतु अबू सेनाके जीवन कालमे ही मजहबका जोर इतना बढ गया था कि वे विचारवादी-बुद्धिवादी लोगों और दार्शनिक विचारको तथा अविश्वासियोसे खुल्लम खुल्ला बलके आधारपर लडते और उन्हें कठोरसे कठोर दड देते। इतना ही नहीं, अब मजहबके समर्थकाने भी तकका सहारा लेना आरभ कर लिया और उसमें भी कुछ विचारक पैदा हुए जिन्होंने स्वतत्र विचार प्रणालीको मानो सदा सर्वदाके लिए खत्म कर दिया। खैयामके दिनो ही 'गजाली', जिन्हें इस्लामका सबसे बडा पडित एव इस्लामका रक्षक माना गया है बगदादमे सबसे बडे धार्मिक पदकर आसीन थे और उनकी विचारधाराने अबू सेनाकी विचार-प्रणालीको सदा-सर्वदाके लिए भुला दिया।

उमर खैयाम : जीवन और कार्य

उमर खैयामने अबू सेनाके कई शिष्यास दर्शनकी शिक्षा पायी। हकीम सनाईकी शिष्यता भी ग्रहण की। वे अबू अलम फासिर मुहम्मद बिन मन्सूर सुर्खी काजीयुल्कजासे भी पढे थे। दर्शनमे उनका गुरु अबुलहसन अनबेरी था जिससे उन्होंने यूनानी दर्शनकी सबसे बडी पुस्तक मुहब्बती पढी। खुरासानके विद्वान् प्रकट रूपसे यूनानी दर्शनके विरोधी थे इसलिए खैयामको भी बडे ही विरोधका सामना करके जीना पडा। खैयामके ऊपर अबू सेनाके प्रभावका पता इस बातसे भी लगता है कि वे मृत्युसे कुछ क्षण पूर्व उनकी रचना 'किताबुश्शिफा' का 'एक और अनेक' नामक अध्याय पढ रहे थे। अचानक उन्होंने पुस्तक रख दी और कहा, "हे ईश्वर, मैंने अपनी शक्तिके अनुरूप तुम्हें जान लिया है। अत मुझे क्षमा करो। वास्तवमे इतनी जानकारी जितनी मुझे प्राप्त हो चुकी

1 His idea of Paradise was the Neoplatonic conception of union with the first Intelligence

है, यही अर्थ रखती है कि मैं आपके पास पहुँच जाऊँ।" [१] इन शब्दोंके साथ ही उनके होठ सदा सर्वदाके लिए बंद हो गये।

इसी बातका समर्थन करते हुए डॉ. सर जे जे मोदी 'मौलाना शिबली और उमर खैयाम' की भूमिकाके पृष्ठ ३९–४० पर लिखते हैं —

Umar Khayyam is said to have "followed in the foot steps of Avicenna" in the matter, both of "ecstatic spiritualism of the Sufis" and "the colder pessimistic scepticism" [2] Abu Sena (Avicenna) seems to have had some influence upon Umar Khayyam Maulana Shibli gives us an interesting story about Umar's death, showing what great influence Abu Sena's writings had, upon Umar It is said that, one day, when Umar was reading Abu Sena's "Kitab-us-Shifa" i e the Book of Healing, when he came across the discussion on "Wahedat-o-Kasrat" (i e the one and the many) "he at once got up said his prayers, prepared his will, fasted till night, performed the last evening prayer, bowed down and said, "O God, I have known Thee to the extent of my power, forgive me therefore" With these words on the lips he breathed his last"

उमर खैयाम ईसवी सनकी ११ वी शताब्दिमे जन्मे थे। श्री ज के. एम शीराजी अपनी पुस्तक 'Life of Omar al Khayyami' (उमर खैयामकी जीवनी) मे उनके खैयामी नामसे चलती आयी विचारधारा, कि 'वे तबू बनानेवाले थे' से सहमत होते हुए, उन्हे अरब जातिका वंशज बताते हैं, ईरानी नही क्योंकि उनके कथनानुसार ईरानमें खैयामी नाम नहीं पाया जाता। पर जो भी हो, हम उन्हें तबू बनानेवाला स्वीकार नही कर सकते। अगर वे तबू

१ "*Literary History of Persia*" *Vol II Page 251 by* E G Browne

बनानेवाले रहे होते तो उनके पिता इब्राहीम उन्हें अपने युगके दो महान् व्यक्तियोंके साथ निज़ामुल्मुल्क और वातिनियोंके बानी हसन-बिन-सब्बाहके साथ, शिक्षा देनेके लिए भेज न पाते। इन तीनोंकी बाल्यकालकी मित्रताने आगे चलकर बहुत ही गुल खिलाये हैं, खैयाम और निज़ामुल्मुल्क अंत तक मित्र बने रहे जहाँ कि हसन बिन-सबाहके षडयंत्रोंके कारण निज़ामुल्मुल्कका वध हुआ और उसीके आघातोंने खैयामको भी क्षीण कर दिया था। पर हम इन राजनैतिक बातोंका विस्तार यहाँ नहीं करेंगे।

लोगोंका बहुधा विचार है कि खैयामकी प्रसिद्धिका कारण प्राफेसर कॉवेल एवम फिट्ज़ेरल्ड अथवा पश्चिम ही रहा है। अगर ये लोग उसे चमत्कार प्रस्तुत न करते तो संभवतः खैयाम एक कविके रूपमें दुनियामें प्रसिद्धि न पा सकते। किंतु उनकी यह विचारधारा पूर्ण सत्य नहीं मानी जा सकती। उन्होंने (पश्चिमवालोंने) उनकी ख्यातिमें योग भले ही दिया हो पर वे ही उसके एक मात्र अधिकारी नहीं हैं। आईन-अक्बरीमें अकबरकी ये पंक्तियाँ मिलती हैं —

> बायद कि पस अज़ हर गज़ले ख्वाजा हाफिज़
> रुबाई ये उमर खैयाम कर नवीसद वर न
> सवानदने आँ हक्म शराब बे गज़क दारद।

(' i e after every ode of Hafiz one ought to write a rubai of Umar i khayyam, otherwise, it is like drinking wine without a relish)[1]

ईरान अपने कवि खैयामसे अपरिचित नहीं था। १३ वीं शताब्दिमें हाजी मिरज़ा मुहम्मद शीराज़ी द्वारा लिखित कवियोंके विषयमें लिखी हुई पुस्तक Zanjam and Tabriz ' (ज़ंजम व तबरीज) में भी उमर खैयामका नामोल्लेख मिलता है और उनका १०० से अधिक आयु तक जीवित रहनेका उल्लेख भी प्राप्त होता है।[2]

---

१ Ain-i-Akbari Blochmann's Ed Vol II page 288
२ Life of Omar al khayami by J K M Sirazi

किंतु बात यह भी है कि खैयामकी प्रसिद्धि एक कविकी अपेक्षा दार्शनिक, ज्योतिषी, और हकीम (वैद्य) के रूपमे अधिक रही है। उनके ये रूप इतने ज्वलंत रहे हैं कि उनके सामने उनका कवि-रूप गौण पड जाता है। इतना ही नही तो उस युगमे ईरानमे प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ भी बोलता था वह कविता ही होती—कविता उनके दिलोकी धडकनके समान स्वाभाविक बन गयी थी, इसलिए, भी, वह अपना आकर्षण खो बैठी थी और कवि बनना कोई महत्त्वपूर्ण बात नही मानी जाती थी और जहाँ ईरानके अन्य जगमगाते सितारे काव्याकाशमे चमक रहे थे (रूमी हाफिज़ आदि) उनमे ये भी मिलकर रह गये पर पश्चिमने ऐसी एक भी विभूतिके दर्शन नही किये थे, अतः ये वहाँ जाकर अधिक ही चमके जो स्वाभाविक भी था। '*घरका जोगी जोगडा आन गाँवका सिद्ध*' *की उक्ति व्यर्थ नही* कही गयी।

खैयामके अप्रसिद्ध रहनेका प्रधान कारण यह भी है कि उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा, अपने बौद्धिक पक्ष द्वारा बडे-बडे धार्मिक नेताओंकी मान्यताओं और सिद्धातोको ठुकराकर, झुठलाकर अपनी मान्यताओंको स्थापित करना चाहा था, यह नही कि उनकी रचनाओमे बुद्धिका प्राधान्य होनेके कारण वे (खैयाम) ठीक समझे नही गये। यह धार्मिक आघात धर्मके ठेकेदारोसे सहन न हो सका, इसीलिए उन्होने खैयामकी फिलासफी (दर्शन) को गलत रूपमे रखा और उसे शरीयतका विरोधी एव काफिर कहा। उस युगकी विशेष विचारधारा यह भी रही है कि 'जैसा तुम्हारा मालिक देखता है, तुम वैसा ही देखो।'[१] किंतु हम देखते है कि खैयाम स्वतत्र विचारोंके समर्थक थे और उन्होने कुरानकी व्याख्याओका खडन करते हुए अपने मनोनुकूल बौद्धिक आधारपर नयी व्याख्याएँ प्रस्तुत की जहाँ कि, मजहब तर्कको नही, केवल विश्वास (अकीदे)को

---

१. ('Think as your master thinks' was the motto of the age.) Life of Omar-al-Khayyam by J. K. M. Shir pa - 11

ही महत्त्व देता रहा है, अत उनकी रचनाओको विकृत करने एव मिटानेका प्रयत्न भी होता रहा। तिसपर भी जो खैयामकी रचनाओंकी इतनी पाडुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं उसका कारण उनकी लोकप्रियताके साथ राज्याश्रय भी है क्योंकि खैयामको सजरकी दरबारमें निजामुल्मुल्कके दिनोंमे बडा ही महत्त्व प्राप्त था।

हमारे ये हकीम शायर अपने जमानेकी अक्सर समस्त विद्याओ और विशेष रूपसे ज्योतिष, दर्शन व वैद्यकीमे बडी योग्यता रखते थे। मलिकशाहने पचागके लिए जिन बडे-बडे ज्योतिष्योको नियुक्त किया था उनमे खैयामका स्थान महत्त्वपूर्ण था। मलिकशाहका बेटा संजर जब मरणासन्न था तब खैयामके उपचारसे ही वह जी उठा। विद्या एव दर्शनके क्षत्रमे ही नही, मजहबके क्षत्रमे भी गजाली तक उनकी विद्वत्ताकी दाद देते थे। कुरानकी आयतोकी उनके मुँहसे व्याख्या सुनकर गजालीको कहना पडा था कि 'खुदा ऐसे लोगोको विद्वानोमे जोडते रहे। अनेक दार्शनिक तथा कुरान वाचक भी कुरानके इतने अर्थोंसे परिचित होगें यह कहना कठिन होगा।'[1]

मौलाना शिबलीके विचारानुसार खैयाम स्वय पियक्कड थे पर हमे ऐसा कोई प्रमाण नही मिलता। मौलाना शिबलीने ही खैयामके शराबनोशी (शराब पीने) सबधी विचारोपर प्रकाश डालते हुए बताया है कि उन्होंने शराब पीनेवालोंके लिए जिन नियमोंका पालन आवश्यक ही नही अनिवार्य बताया है, उन नियमोका पालन कोई *बुद्धिमान व्यक्ति ही कर सकता है*, वे सर्वसाधारणके वशकी बात नही हैं।[2] अत यह बात स्वय सिद्ध करती है कि खैयाम शराब नही पीते थे क्योकि कोई भी बुद्धिमान शराब पीना अच्छा नही समझता। हाँ, यह अवश्य सभव है कि खैयामकी शराब भी उनके गुरु अबू सनाके अनुरूप बौद्धिक शराब हो जिसके सिवा मिलन असभव बात है।

---

१ वही पृष्ठ ५०–५१ (नुजहतुलअर्वाहके आधारपर)

२ 'Maulana Shibli and Omar Khayyam' by R P. Bhajiwala Foreward by Dr Sir J J Modi pp

इस विषयमें गल्तफहमी होना बडी सरल बात है। महाशय रेनाल्ड निकलसनने अपनी पुस्तक "The Mystics of Islam" मे लिखा है, "किसी रहस्यवादी भजनको भूलसे मद्यपोका गाना या प्रेमीका साध्य-गीत समझ लेना बिल्कुल सरल है। अरबोमे उत्पन्न सबसे महान् ब्रह्मवादी इब्नुल-अरबीको अपनी कुछ कविताओपर, इस कलक पूर्ण आरोपका खण्डन करनेके लिए, कि वे उसकी रखेलिनके रूपलावण्यकी प्रशसा हेतु लिखी गई थी, भाष्य लिखनेके लिए बाध्य होना पडा।"[१] पर खैयाम उन लोगोमेसे न थे जो अपनी सफाई पेश करना पसद करते हो, उन्हे अपनी मस्ती प्रिय थी, वे सासारिक प्रतिष्ठा पानेके इच्छुक न थे। अगर होते तो वे भी खुशामदका सहारा लेकर आरामका जीवन व्यतीत करते। इब्नुल अरबीका ही कथन है –"आरिफ (ज्ञानी) अपनी भावनाओंको दूसरोमे नही उतार सकते, वे केवल प्रतीकात्मक ढगसे उन्हे उन लोगोको बतला भर सकते हैं जो उन्हीकी भाँति अनुभव करने लगे हैं।"[२] इसी विषयमे निकलसन साहब लिखते हैं, 'यह प्रेम-सबधी तथा मद्यप-सबधी प्रतीकवाद इस्लामी रहस्यवादी कविताकी ही विशेषता नही है, किंतु इतनी पूर्णता और इतने उन्नत ढगसे इसका प्रदर्शन अन्यत्र कही नहीं हुआ है। यूरोपीय आलोचकोंने इसे बहुधा गलत ढगसे समझा है और उनमेसे एकाध अब भी सूफियोंके आल्हादो (भाव-विष्टावस्था) को, 'अज्ञात मदिरासे अनुप्राणित और विषय-वासनासे अतिरजित" कहते हैं।"[३]

अगर खैयाम युग प्रवृत्तक न भी थे तो भी उनमें युग-प्रवर्तक कविके समस्त गुण विद्यमान थे। साधारणतया यह माना जाता है कि वही कवि युग प्रवर्तक होता है जो आनेवाले कवियोको अपना अनुयायी बनानेकी क्षमता रखता हो। आनेवाले कवि अपनी रचनाओंमे उसकी ही परिपाटीको अपनाएँ जैसे फिरदौसीके शाहनामेके

---

१ इस्लामके सूफी साधक-निकलसन-पृष्ठ ८८

२. वही-पृष्ठ ८९

३. वही-पृष्ठ ९०

आधारपर आगके कवियोंने अपनी रचनाओंके नामकरण सामनामा बरजोरनामा, कमरोजनामा जहानगीरनामा आदि रस जैसा कि घद बरदाईके अनुरूप रासो परपराका चल पडना विहारीक अनुरूप मुक्तक परपराका चल पडना। हम देखत हैं कि खैयामने ईरानके एव मात्र मौलिक छन्द रुबाईमें कविता की पर उनकी देखा-देखी अनेक लोगोने उनका अनुकरण किया इतना ही नहा अपनी रचना ओंको खैयामके नामपर चढाकर खपानेका प्रयत्न किया जिससे भी खैयामकी ख्यातिका परिचय मिलता है पर आज उनका ३०० रुबाइयोंके करीब मौलिक रुबाइयोंक स्थानपर १२०० से अधिक रुबाइयाँ पायी जाती हैं जिससे उनकी रचनाओका प्रमाणित करना अवश्य ही कठिन काय हो गया है। इतना ही नहीं ईरानके सुप्रसिद्ध सूफी कवि हाफिज़ तक खैयामस अत्यधिक प्रभावित रह हैं और *कुछ साहित्यके इतिहास लेखक उन्हें खयामका शिष्य ही मानते* हैं जिनस भी हमारे आलोच्य कविकी महानताका परिचय हमे मिलता है।

खैयामके वर्णित विषय है ससारकी असारता ससारम व्याप्त *दुख, शराबकी प्रशसा भाग्यवाद पश्चाताप एव क्षमा* याचना' बौद्धिक निराशावाद। वे तो यही कहेग कि अगर ईश्वरने ही दुनिया निर्माण की और आज उसम बुराई देखा जाती है तो यह किसका दोष है? अगर ईश्वर वास्तवम दयावान है तो वह दडका विधान क्यो करता है? लोगोको दडक भयसे क्यो भयभीत करता है? अगर शराब शरीरतके विरुद्ध है ता खुदाने उसका सृजन ही क्यो किया? खुदान सुदर वस्तुओको निर्माण ही किस *लिए किया अगर उसका मूल उद्देश्य ही उनको नष्ट करना था?* अब हम खैयामके दार्शनिक विचारोको उनकी रचनाओके आधारपर देखेंग और फिर उनका अग्रजीम अनदित रचनाओस तुलनात्मक अध्ययन करेग और देखग कि वे कवि कहा तक खयामकी विचार धाराको प्रस्तुत कर सके है उनम कितनी मौलिकता है फिर कही हम भारतमें हालावादका मूल्याकन कर सकग।

पश्चिमकी दृष्टिमें खैयाम (खैयामके अनुवादक)

खैयाम अपनी अनुभूतियोंको पूरी तरह व्यक्त नही कर पाया है। उसे इस बातका विश्वास है कि इस युगमे सत्य बातपर विश्वास करनेवालोंकी सख्या कम ही नही, नगण्य है और वे भी सभवतः कबीरदासकी ही भाँति यह सोचते हुए कि, " साँच कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना " खामोश रहना पसद करते हों, इस कारण उनकी वे अनुभूतियाँ अव्यक्त रह गयी हों जैसे अनुभूतिको अभिव्यक्त करनेमे असमर्थ व्यक्तिकी अनुभूति अव्यक्त रहकर उस व्यक्तिके साथ ही दफनाई जाती हो:-

> Since there is none, as I can find,
> Of those brave wizards of to-day,
> Worthy to hear, I can not say,
> The wonderous thought I have in mind.[१]

शायद यही सोचकर खैयामने अपनी रचनाओंका सकलन न किया हो अथवा यह भी उनकी सादगीका परिचायक है जैसा कि एडवर्ड फिटज़जेरल्ड मानते हैं। यथा :-

> " Many quatrains are mashed together :
> and something last, I doubt of Omar's
> simplicity, which is so much a virtue in him. "[२]

खैयामकी रचनाओमे भक्त कवियोके समस्त गुण विद्यमान हैं। जहाँ वे अपनेको पतित शिरोमणि घोषित करते हुए ईश्वरकी दयामय दृष्टिके आकाक्षी दिखायी देते हैं, उस पतित पावनको चुनौती-सी देते हैं कि देखें कि कौन बडा है। मैं पापोंमे बडा बनता हूँ अथवा ईश्वर अपनी दयामयतामे बडे सिद्ध होते हैं ?

---

१. " Omar Khayyam " A new version based upon recent discoveries by Arthur J. Arberry–1952 Edn. page 31

२. The Romance of Rubaiyat by A J. Arberry–1959 Edn. page 94.

आनम कि पदीद गशतम अज कुदरते तो,
सद साला शुदम बनाज़ो नेमते तो,
सद साल ब इम्तहान गुन ख्वाहम कर्द,
ता जुर्म मन अस्त बेश या रहमते तो।

(I am O lord, as Thou created me
Thy grace has saved me for a century,
A century more " I' ill live in sin to know
If sins of mine exceed God s clemency) "[१]

देखिए,उनकी क्षमा-याचनाकी भावनाको कि मैं जान-बूझकर पाप एकत्रित कर रहा हूँ ताकि मैं देख सकूँ कि मेरे पाप आपकी दयासे बढकर हैं क्या ! अतमे किसकी विजय होती है !

फर्याद कि उमर् रफत बर बहूदा
हम लुकमा हरामो हम नफस आलूदा
फरमूदए नाकरद सिया रुयमकर्द
फर्याद ज करदहाए ना फरमूद ।

(Alas ! in vain my life has run its race,
My deeds and thoughts are all devoid of grace,
Oh that I did from what I should abstain,
Thus doing wrong has blackened all my face)[२]

किंतु इन्ही रचनाओको मौलाना शिबली जैसे विद्वानने शुद्ध अथमे ग्रहण नहीं किया एव इन रचनाओको कविकी अपने पापो एव दुष्कर्मोकी स्वीकारोक्ति माना है। पापी भी अगर अपने पापोकी स्वीकारोक्ति करता है तो वह पापी रह ही कहाँ जाता है ? उसका मन शुद्ध होनेपर ही यह सभव है अयथा नही अयथा पापी कब अपनेको पापी कहता है ? अगर वह अपनेको पापी समझने लग तो

---

१ Translated by Whinfield Maulana Shibli & Omar khayyam page 68-69

२ Translated by Whinfield– ' Maulana Shibl & O [illegible]

उसके मनको परिष्कृत मानना ही होगा। किंतु ये रचनाएं तो विनय एव भक्तिके अतर्गत आती है जहाँ एक भक्त अपने भगवानसे डरता हुआ नित्य ही अपनेको गलत मानता है कि कही वास्तवमे उसका पैर गलतीसे ही गलत रास्तेपर न पड गया हो। मौलाना शिबलीने खैयामकी निम्न पक्तियोको भी इस आशयसे ग्रहण किया है कि एक बार जब खैयाम शराब पी रहा था कि उसका प्याला गिरकर टूट गया। इसपर उसने ईश्वरको पुकारकर कहा कि " हे ईश्वर, तुमने मेरे हाथोंसे प्याला लेकर तोड दिया, शराब मिट्टीमे बहा दी, शायद तुम अपनी साधुता भूल गये हो। "

इब्रीके मए मरा शिकस्ती रब्बी
बर मन दरे ऐश रा ब बस्ती रब्बी
बर खाक रेखती मए लाले मरा
खाकम ब दहन कि सखत मस्ती रब्बी।

(My flask Thou brok'st, my wine Thou didst
out pour,
And closed on me my only pleasure's door,
Dust in my mouth, O Lord, I must declare,
Sure at that moment Thou wert sane no more)[१]

क्या इन पक्तियोंसे साधुता एव महानताका परिचय नही मिलता कि जो बुरेसे भी भला बरताव करता है, वही भला है ? भलेसे तो भला बरताव सभी करेंगे, वह तो लेन-देनकी बात हो जाती है, किंतु बुरेसे भला बरताव करनेवाला ही तो महान् हो सकता है। वे तो इस बातके पक्षपाती रहे हैं कि दूषित व्यक्तिको हमे और भी निकट रखना चाहिए ताकि वह हमारे सहवासमे अपने दोष छोड सके। उसे दूर रखकर हम बुराईको और भी भडकाएँगे। उनकी निम्न पक्तियोंमे कितना कठोर सत्य है जहाँ तथाकथित उच्च वर्गसे पूछ ही तो बैठते हैं कि बताओ कि ससारमे ऐसा कौन मनुष्य है

१. वही पृष्ठ ६९

जिसने गुनाह नहीं किया ? अगर मेरी बुराईका तुम बुराईमें बदला देते हो तो बताओ कि मुझमें और तुममें अंतर ही क्या है ?—

ना करदह गुनाह दर जहान कीस्त बिगू
आँ कस कि गुनाह नकर्द चू जीस्त बिगू
मन बद कुनम व तू बद मकाफात देही
पस फर्क म्याने मन व तू चीस्त बिगू

(What man on earth has sinned not ? Tell me pray,
How lives the man that sins not ? Tell me pray,
If Thou with ill requit st my evil deeds
Where lies the difference 'twixt us ? Tell me pray)[१]

इन पंक्तियोंका संबंध ईश्वरके साथ भी जोड़ा जा सकता है कि यदि ईश्वरकी दयामयतामें विश्वास रखता है और मानता है कि वह हर बुरे व्यक्तिको भी गले लगाता है अपनी दया दृष्टिसे उसे वंचित नहीं करता। अगर वह भी भेदभाव रखने लगे तो फिर उसमें एवं साधारण मनुष्यमें अंतर ही क्या है ? अतः भगवानके पास किसी प्रकारका भेदभाव नहीं हो सकता। इस्लाममें ईश्वरोपासनाके पीछे भयकी भावनाका समर्थन किया है पर सूफी संतोंने ईश्वर प्रेमको ही महत्त्व दिया है एवं ईश्वरकी दयामयतामें उनका अखंड विश्वास रहा है। सूफी साधना पद्धतिकी यह अपनी विशेषता है। खैयाम भी वास्तवमें एक सूफी संत ही उसने संसार त्यागकी भावनाको न अपनाया हो पर उसके सिद्धांत उसे सूफी समुदायके अंतर्गत ही लाकर खड़ा करते हैं। उन्होंने शराब साकी आदि शब्दोंको प्रतीकात्मक स्वरूपमें ही अपनाया है जैसा बहुधा ईरानके समस्त सूफी साधकोंने किया है किंतु मौलाना शिबली तो इस बातका ही समर्थन करते दीख पड़ते हैं कि वे शराब पीते थे इसलिए ही शराबके गीत गाते थे। उनकी बातका खण्डन करते हुए मीर वलीउल्लाह 'रसूलेकरीम' के लेखकने अपनी उसी रचनामें इस बातका खण्डन किया है और बताया है कि अगर हम मौलाना शिबलीकी बातको सत्य मानें तो

१ वही-पृष्ठ ६९

फिर ईरानका एक भी कवि ऐसा नही जिसपर शराब पीनेका आरोप न लगाया जा सके और वे भी इस बातके समर्थक है कि खैयामकी शराबनोशीका समर्थन ऐतिहासिक पुस्तकोमे कही नही मिलता ।[1]

भाजीवाला अपनी पुस्तक 'मौलाना शिबली व उमर खैयाम' मे पृष्ठ ८२-८३ पर इस बातपर प्रकाश डालते है कि ख्वाजा हाफिज़ने शराब-सबधी सपूर्ण विचारधारा खैयामसे ही उधार ली है। पर खैयामके वर्णनमे जो रगीनी है, तल्लीनता है, जहाँ व्यक्ति आत्म-विस्मृतिकी अवस्थाका अनुभव करने लगता है, वह तल्लीनता हाफिज़में नही, भले ही उन्होने खैयामकी विचारधाराको सँवारकर, संजोकर प्रस्तुत किया हो; पर दुर्भाग्य तो यह है कि हाफिज़पर शराबनोशीका आरोप नही, वह है मात्र खैयामपर। यह शायद इसलिए भी कि खयामने फकीरीको नही अपनाया, अपना सामाजिक जीवन जीकर राज्य दरबारमे उच्च आसनपर आसीन होकर अपना जीवन व्यतीत किया है।

खैयामका दर्शन जीवन दर्शन है। वह जीवनकी वास्तविकताको परखनेके लिए ही प्रश्न करता रहा है कि, "तुम कौन हो ? तुम कहाँसे आये हो ? तुम क्या कर रहे हो ? तुम कहाँ जाओगे ?" यही प्रश्न सुलझानेके लिए खैयाम हमें बार-बार आमंत्रित करता है:-

गर अज़ पये शहवत व हवा ख्वाही रफ्त,
अज़ मन खबरत कि बे नवा ख्वाही रफ्त,
बिनगर चे कसी ? व अज कुजा आमदई ?
मीदान कि चे मी कुनी ? कुजा ख्वाही रफ्त ?

(If Greed and Passion's wicked ways you trace,
Beware, you'll die a beggar in disgrace,
Consider what you are, from where you come,
What here you do, and where's your future place?)[2]

---

१. 'कसूलेकरीम'– मीर वलीउल्लाह पृष्ठ ४८-४९.

२. Translated by Whinfield–मौलाना शिबली व उमर-खैयाम-पृष्ठ : ९३.

दर्शनका इससे बढकर क्या विषय हो सकता है? धार्मिक सम्प्रदाय जहाँ एक दूसरेपर कीचड उछालनेमे ही अपनी महानता देख रहे थे और अपनी सकुचित वृत्तिके कारण दूसरे सम्प्रदायवालोको काफिर कहते थे क्योकि वे उनके सिद्धातोके अनुयायी नही थे और ये बातें केवल शब्दो तक सीमित न रहकर हाथापाईपर उतर आती और बगदादकी गलियाँ खूनसे रगीन हो उठती। शीया, सुन्नी हवली, अशारिया मुतज्रिली, कादरिया सभी आपसी झगडोमे उग्र थे जहाँ कि हम यह जानते हैं कि ईश्वर वर्णनातीत है उसको किसी भी सीमामे आबद्ध नही किया जा सकता, यह नही कहा जा सकता कि वह दुनियाको खोज निकालनेवाला है या उसने ही सादृश्य इस दुनियाका निर्माण किया है। ईश्वर शब्द किसी शक्तिके रूपका द्योतक है या वह मात्र नामके लिए है? ऐसे वातावरणमे अगर खैयामने ही मानव को आत्मपरीक्षणकी ओर उन्मुख किया तो यह सहज स्वाभाविक था कि वे धर्मसप्रदाय अपने अधिकार छिनते देखकर बौखला उठते। अत उन्होने खैयामको बदनाम करना ही अपना अभिष्ट बना लिया। पर खैयामपर जो मस्ती थी वह उन्हें डरना सिखा ही नही सकती थी, उन्होने तो उन कठमुल्लाओपर सीधे व्यगबाण छोडे। खयामका सबसे बडा दोष था उनकी दी हुई नैतिक शिक्षा एव मुल्ला मौलवियोका धोखेबाजीको खुले शब्दोमे व्यक्त करना। सादी और हाफिजने भी धर्मगुरुओके दुराचारपर प्रकाश डाला है पर खैयामकी विशषताको वे नही पहुँच पाये। देखिए एक ही रुबाईमे वे क्या कुछ नही कह गये हैं। एक मुल्लाने एक बदचलन स्त्रीको सबोधित करते हुए कहा कि "तुम कितनी पापिनी हो! तुम यह नहीं जानती हो कि तुमने क्या छोड दिया है और क्या कर बैठी हो! उस स्त्रीने उत्तर दिया कि "मैं जैसी हूँ वैसा ही अपने आपको दिखाती हूँ क्या तुम भी जैसा अच्छा अपनेको दिखाते हो वैसे हो?

जाहिद ब जन फाहिशा गुफ्ता मस्ती
हर लहजा बदामे दीगरे पा बस्ती
जन गुफ्त चुनाँकि मी नुमायम हस्तम
तू नीज चुनाँकि मी नुमाई हस्ती।

(A monk addressed a harlot: "Drunk thou art,
Thou'st lost thy all to play a wicked part."
"Yea, monk," She said, "I'm what I seem to be;
Art thou so holy in thy inmost heart ?")१.

खैयाम तो एकात जीवनको ही पसद करनेवाले थे। एकात इस तरह कि वे अपनी प्रतिष्ठा बढानेके पक्षमे न थे। वे मानते हैं कि प्रतिष्ठा बढाये रखनेपर व्यक्तिको अपने ईश्वरकी आराधनाका अवकाश नही मिलता और इतना ही नही, जब वह गर्वकी अनुभूतिमे अपनेको ही भूला रहता है तब ईश्वरको क्या याद करेगा ? अत: वे कहते हैं कि गलीसे इस तरह गुजर जाओ कि तुम्हें कोई सलाम न करे, लोगोंके साथ इस तरह मिल-जुलके रहो कि लोगोंको तुम्हे इज्जत देनेके लिए उठना न पडे, अगर मस्जिदमे जाओ तो लोग तुम्हें अपना नेता बनानेके लिए व्यग्र न हो उठें—थोडेमे अपना जीवन इतनी सरलतासे व्यतीत करो ताकि लोग तुम्हें धर्मात्मा समझकर न देखा करे क्योकि एक बार अगर किसीको धर्मात्माकी उपाधि मिल जाए या सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाए तो उसे अपने आपको छिपाये रखनेके लिए बाह्य आचारको अपने जीवनमे इतना अधिक अपना लेना पडता है कि वहाँ व्यक्ति अपने आपको खो बैठता है और अगर उसे ऐसी सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई तो वह अपनी वास्तविकताको नही छिपाएगा। और वही व्यक्ति महान् है जो अपने वास्तविक रूपमे हमारे सामने आता है —

दर राह चुनाँरव कि सलामत न कुनद,
बाखल्क चुनाँ जी कि कयामत न कुनद,
दर मस्जिद अगर रवी चुनाँ रव कि तुरा
दर पेश न ख्वानद व इमामत न कुनद।

---

१. Translated by Whinfield–Maulana Shibli & Omar khayyam–page : 104.

(So wend thy way that no man bows to thee,
So live that thou escape celebrity,
If to a mosque thou goest, go such wise,
That never thou an IMAM haps to be)[१]

आज हमारे धर्मके ठेकेदार किसी भी कार्यके साथ उसकी अच्छाई और बुराईको इस अर्थमें लेते हैं कि वह कार्य अगर बुरा भी है तो क्या ईश्वर उस कामके पश्चात् क्षमा करेंगे या नहीं। अगर क्षमा-योग्य है तो वे करनेमें नहीं हिचकिचाते और अक्षम्य मानकर वे अपनेको दूर रखते हैं। पर खैयामकी नजरमें यह भी पतित अवस्था ही है कि व्यक्तिके मनमें इस तरहकी दूषित भावना जगे और वह अपनी वासनाओंको पहचाननेके लिए यही कसौटी अपनाए। वे तो बस, यही बहुत मानते हैं कि यह सब हम उसके समक्ष करते हैं यही बड़ा अपराध है, उसकी क्षमाशीलता हमें पश्चात्तापसे मुक्त नहीं करती —

बा नफ्सम हमेशा दर न बुर्दम चि कुनम
वज करदं ख्वीशतन ब सम चि कुनम
गीरम कि ज मन दर गुजरानी ब करम
जाँ शरम कि दीदी कि चि करदम चि कुनम।

(I fight against my passions but in vain,
The thoughts of my own doings give me pain,
I know thou wilt forgive me, Lord, but still
My shame that thou hast watched me, doth remain)[२]

हमारे कविने समारके रहस्यको समझ लिया है पर वे डरते हैं कि उनपर विश्वास नहीं किया जाएगा इसलिए वे खामोशीको अधिक पसद करते हैं —

इसारे जहाँ चुनाँकि दर दफतरे मास्त
गुफतन न तवान कि आँ वबाले सरे मास्त

१. Translated by Whinfield–Maulana Shibli & Omar khayyam Page–105
२ वही–पृष्ठ १०६।

चूं नीस्त दरीं मरदुमे दुनिया अह्ले
नतवान गुफ़्तन हर आंचे दर खातिरे मास्त।

(World's mysteries as in my book I find,
I can't disclose through fear of being maligned,
Since there is not a wise or worthy man,
I can't speak out all that, is in my mind)[१]

खैयामका एक महान् गुण उनकी मस्ती एव बेखबरी (निरीहता) है जिस निरीहता तक पहुँचना कठिन बात है, पर इससे हम यह नही कह सकते कि प्रत्येक अबोध व्यक्ति एक महान् दार्शनिक बन सकता है। इस विषयमे मुझे सुकरातकी कथा याद आती है। जब उनसे लोगोंने पूछा कि वह भी कुछ नही जानता और वे भी कुछ नही जानते, फिर दोनोमे अतर क्या है ? महात्मा सुकरातने उत्तर दिया कि, " मैं कम-से-कम इतना जानता हूँ कि मैं कुछ नही जानता; पर आप यह भी नही जानते। " हमारे खैयामको देखिए -

तू बेखबरी,बेखबरी कारे तू नीस्त
हर बेखबरी रा न रसद, बेखबरी।

(Thou art ignorant, Ignorance is not for thee
Every ignorant person can not acquire ignorance.)[२]

खैयाम पलायनवादी कवि नही थे जैसा कि उनपर आक्षेप लगाया जाता है। उन्होने जीवनके लिए सदेश दिया है। कलको भुलाकर आजका मूल्य पहचानकर हारकर न बैठें और जीवनमे आयी हुई कठिन परिस्थितियो एव घटित घटनाओका हमें हँसते हुए सामना करना होगा -

रोज़ी कि गुज़श्ता अस्त अज़ू याद मकुन,
फरदा कि नियामदह अस्त फरयाद मकुन,

---

१. Translated by Whinfield– Maulana Shibli & Omar khayyam–page : 107.

हर नामदह् व गुज़श्ता बुनियाद मकुन,
हाली खुश बाश व उम्र बरबाद मकुन । १

सूफी साधक विश्वकी कल्पना परमात्माकी अभिप्रीत और प्रतिबिंबित प्रतिमाके रूपमे करते हैं। अनेक उद्गमोंसे निकलकर दैवी प्रकाश अततोगत्वा असतरूपी अधकारपर पडता है, जिसका प्रत्ये अणु परमात्माका कोई न कोई गुण प्रतिबिंबित करता है। उदाहरणार्थ प्रेम और दयाके सुदर गुण बहिश्त (बैकुठ) और फरिश्तोंके रूपमे प्रतिबिंबित होते हैं तथा कहर (तीव्र क्रोध) और इतकाम (प्रतिशोध) के भयकर गुण दोज़ख (नरक) तथा शैतानोके रूपमे प्रतिबिंबित होते हैं। मनुष्य सुदर और असुदर सभी गुणोंको प्रतिबिंबित करता है, वह स्वर्ग और नरकका सक्षिप्त सग्रह है। उमर खैयाम इसी सिद्धातकी ओर सकेत करता हुआ कहता है —

"दोज़ख हमारे निष्फल कष्टोंसे प्रकट एक चिनगारी है,
स्वर्ग हमारी प्रसन्नताके समयका एक क्षण है।" २

इसमे मानव जीवनकी, जो सुख एव दुखकी सीमाओमे आबद्ध है, कितनी सुदर एव वास्तविक झलक प्रस्तुत की गयी है। इससे भी सिद्ध होता है कि वे जीवनके ही कवि हैं और उनका जीवनको देखनेका दृष्टिकोण कितना व्यापक है।

इतना कहकर अगर खैयामकी विनोदी प्रवृत्तिके बारेमे कुछ न कहा जाए तो उनके प्रति बडा अन्याय होगा। जीवनकी असारता-नश्वरताको सामने देखते हुए अनुभव करते-कराते हुए भी उनके विनोदी स्वभावमे अतर नही आया था। अनेक गभीर विषयोपर भी हँसी ही विनोदी शैलीमे उन्होंने लिखा है।

सारी दुनियाको गर्दिशके चक्करमे चकराते देखकर खैयाम उसके प्रति अपना असतोष व्यक्त करते हुए अपनेको उसके अयोग्य बताता है और कहता है कि अगर तुम केवल बेवकूफोंको ही क्षमा करते हो

१ तारीख अदबियाते ईरान by डॉ रज़ाज़ादा शफक—अनूदित—सैय्यद मुबारिजुद्दीन 'रिफअत' पृष्ठ २०८
२ इस्लामके सूफी साधक-निकलसन—पृष्ठ ८३

अन्यथा नही तो जान लो कि मैं भी महान् मूर्ख हूँ। मूर्खताका कितना सुंदर परिचय है, देखिए :–

ऐ चरख ज गर्दशे तु खुरसंद नियम
आजादम कुन कि लायके बंद नियम
गर मैके तु बा बेखिरद व ना अहल अस्त,
मन नीज चुनां अहल व खिरदमद नियम।

(Thy wheeling course displeases me, O sky!
Free me, for I'm unfit for tyranny!
If thou to worthless fools alone art kind,
Be kind to me, a worthless fool am I.)[1]

खैयाम अपने मस्जिदमे जानेकी भावनाको किस तरह छिपाता है कि वह वहां नमाज पढने या बदगी करने नही जाता अपितु एक बार वहांसे बदगी करते वक्त काममे लायी जानेवाली चटाई चुरा लाया था और अब भी उसीके समान अन्यकी खोजमे जाता है क्योकि वह गुम हो चुकी है :–

दर मस्जिद अगर बहरे नियाज आमदह् अम,
विल्लाह्, कि न अज बहर नमाज आमदह् अम,
यक रुज ईजा सज्जादई बुजदीदम
आं गुम शुदह् अस्त अज आं बाज आमदह् अम।

(Although to mosque I duteously repair,
But, in the name of God, 'tis not for pray'r,
One day I stole a prayer mat, that's lost,
And looking for one more, I still go there.)[1]

निस्संदेह आज भी ऐसे व्यक्ति हैं जो मदिर-मस्जिदमे जूतोंकी चोरीके लिए जाते हैं या कुछ प्रसाद प्राप्तिके लिए या अन्य भावसे कितने हैं जो वास्तवमें वहां बदगीके लिए जाते हैं ?

---

१. Translated by Whinfield – Maulana Shibli & Omar Khayyam–page : 71.

२. Translated by Whinfield– Maulana Shibli & Omar khayyam–page : 71.

हमारा कवि तो सब दिनोंको समान समझता है। व्यक्तिको अगर संयम-नियम निभाना है तो वह कुछ खास दिनो या महीनोंमें निभानेसे काम नहीं चलेगा। इससे बुराईको प्रोत्साहन मिलता है। बुराईसे सदाके लिए दूर रहनेकी शिक्षा देना उचित है न कि केवल कुछ निश्चित दिनो *या महीनोंमे । इस बातको हमारे कविने बड़े ही सुंदर ढगसे* व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि शरीयतके अनुसार शाबानके महीनेमे तथा रजबके महीनेमे शराब नही पीनी चाहिए क्योंकि ये दोनो महीने ईश्वरके हैं। अत वे निर्णय लगाते हैं कि रमज़ान जरूर मेरा होगा, मैं उसी महीनेमे पिऊँगा। यहाँ यह दृष्टव्य है कि रमज़ान–मुसलमानोंका रोजोंका महीना – पवित्रतम महीना माना जाता है। आशय उनका शराब पीनेका नही, मात्र संयमके रूपपर एक विनोद-*मय व्यंग प्रस्तुत करना है*—

गुयद कि मैं मखुर कि शाबान न रवा अस्त,
न नीज रजब कि आँ महे खासे खुदास्त,
शाबान व रजब महे खुदायस्त व रसूल,
मा मैं रमजान खुरीम काँ खासये मास्त।

(In Shaban I am asked to drink no wine
Not in Rajab which is a month divine,
If God and Rasool claim these two as theirs,
In Ramzan will I drink, that's surely mine)[१]

इस्लाम धममे यह विश्वास है कि कयामतके दिन लोग उसी अवस्थामे जागते हैं जिस अवस्थामे उनकी मृत्यु होती है। खैयामने *इस भावनापर भी विनोदात्मक व्यंग किया है। वे कहते हैं कि अगर* यह सत्य है तो अच्छा ही है, जो यहाँ आनद उपभोग करता है वह वहाँ भी आनंदावस्थामें ही पहुँचेगा, रहेगा, फिर तो कोई आवश्यकता ी नही अपने शरीरको यातना देनेकी और दुख भुगतनेकी और इसी लिए ही मैं यहाँ अपने दिन और रातें अपनी प्रेयसी एव मदिराके सहवासमें व्यक्त करता हूँ कि मुझे वहाँ भी उनसे वंचित रहना न

१. Translated by Whinfield–Maulana Shibli & Omar khayyam . page–71.

पडे और उनकी प्राप्ति निश्चित रहे। कबीरकी उन पंक्तियोंको भी देखिए कि "जो कबिरा कासी मरै, तो रामै कौन निहोर?" हमारा कवि भी कहता है —

गूयद कि ज़ों कसाँ कि बा परहेज़ अद
जानसान् कि बमीरद बरानसाँ खीज़द
मा बा मै व माशूक अज़ानीम मुक़ीम
ता बू कि बशहर आँ चुनाँ अंगीज़द।

(They say, that as a pious person dies
So he again on Final Day shall rise,
That is why with Wine and Love I like to stay
That I may wake up from my grave likewise)[१]

हमारा कवि शराबको कटु कठोर सत्य ही मानता रहा है जिसका पान कठिन होते हुए भी अनिवार्य होता है।

गूयद व अफवाह कि मै तल्ख बुवद,
शायद कि बहर हाल कि मै हक बाशद।

(Its taste, like truth is bitter in the mouth,
Hence, we may call it "Truth"–this juice of wine)[२]

और दुनिया सत्य, कठोर सत्यको सुननेकी नित्य ही नसीहत (शिक्षा) देती है, क्या मेरी शराब उस सत्यसे अधिक कटु, कठोर नहीं?

न गुफ्तै कि व तल्खी बसाज़ व पंद पिज़ीर
बिरव कि बादै मा तल्खतर अज़ीं पंदे मास्त।

(Don't you advise to hear and hear a bitter truth?
Away, my wine s more bitter than this truth forsooth)[३]

आज भी न जाने कितने लोग मात्र दिखावेके लिए धर्मावलंबी

---

१ Translated by Whinfiled- Maulana Shibli & Omar khayyam- page 72

२. वही–पृष्ठ ७३

३ वही–पृष्ठ ७४

बने हुए हैं। उनके मनमे वासनाओका ज्वार पूजा-वदगीके समय भी उठता रहता है पर वे अपने ढागी रूपको बनाये रहते हैं। कबीर दासने भी एसे ढोगी लोगोपर करारे व्यग किये थे। हमारा कवि सीधा उनके नामपर इन भावनाओंको न चढाकर स्वानुभूतिके रगमे उन्हें रगकर प्रस्तुत करता है कि जब मैंने आराधना एव उपवासका निणय किया और मेरी इच्छा पूर्ण भी हुई पर उस समय हवाके झोंके (प्रयसीके मुखसे निकले उच्छवास) और शराबकी एक बूदने मेरा व्रत उपवास भग कर दिया –

तवअम ब नमाज व रोजे चू माइल गुद
गुफतम कि मुरादे कायम हासिल शद
अफसूस कि औं वजू ब बादे ब शिकस्त
व इन रोज ब नीम जुरए म बातिल शुद।

(Methought when I inclined to pray and fast
My heart s des re was attained at last
Alas ! a breath of wind a drop of wine
Spoiled my ablution and annulled my fast)[१]

निस्सदेह हमारी धार्मिक भावनाओम सिद्धातोंमे कोई गल्ती मूलम हो गयी है। हमने जो नरक एव स्वगका जाल बिछाकर व्यक्तिको सदाचारकी ओर उन्मुख करनेका प्रयत्न किया है क्या यह भूल नही ? हम कहते हैं कि स्वगमे शराब (सोमरस) एव अप्सराएँ (हूरे) मिलती हैं। अगर यह सत्य है और हम अच्छे काय करनेके पश्चात् ही यह सुखभोग कर सकते हैं तो क्या आज अगर मैं इनका उपभोग करता हूँ तो यह पाप किस प्रकार माना जाएगा ? इन पक्तियोमें कितनी भारी चोट हमारी धम-व्यवस्थापर है यह स्पष्ट ही हो जाता है। देखिए –

गूयद कि फिरदौसे बरीन ख्वाहद बूद
आजा म नाब व हूरे ऐन ख्वाहद बूद
गर मा मै व माशूक गुजीदीम चि बाक,
चू आकेबते कार चुनीं ख्वाहद बूद।

---

१ Translated by Whinfield – Maulana Shibli Omar khayym page–75

("In paradise are Huris sweet and fair,
And wine to drink in plenty," men declare;
Then if I choose them here on Earth, why fear?
Since, such will be the end of the affair.)[1]

दूरके ढोल तो सुहावने होते ही हैं। निकट आनेपर ही उनकी वास्तविकताका पता चलता है, फिर दूर स्थित वस्तुओंके पीछे उपलब्ध वस्तुओंको भी त्याग देना यहाँकी बुद्धिमत्ता है ? अगर धर्म-उपदेशक स्वर्गकी हूरों (अप्सराओं) का आकर्षण दिखाकर हमसे अच्छा काम करवाना चाहते है तो फिर मेरी दृष्टिमे नौ नकद न तेरह उधारका दृष्टिकोण अच्छा है। नही तो वही धोबीके कुत्तेकी हालत न हो कि न घरका न घाटका। देखिए :—

> जाहिद गुयद बिहिश्त बा हूर खुश अस्त,
> मी गूयम शराबेअंगूर खुश अस्त,
> ईं नकद ब दस्त अजाँ निसया बिदार,
> आवाजे दुहल शुनीदन अज दूर खुश अस्त।

("Sweet are the maids of Heaven," Zealots say,
But sweeter far this juice of grapes to-day;
Come, take this cash and let that credit go,
The din of drums is sweet when far away.)[2]

क्या ऐसा भी कोई व्यक्ति हो सकता है जिसको किसीसे प्यार न हो ? हरेक किसी-न-किसीके चावमे उलझा हुआ है, कोई ईश्वरकी, कोई धनकी, कोई पदकी, कोई प्रियकी चावमे उलझा है और प्रत्येक व्यक्तिपर किसी-न-किसी प्रकारका नशा तो रहता ही है। जीवन स्वय एक नशा है। फिर भी किसीको धनका नशा है, किसीको रूपका, किसीको जवानीका, किसीको सासारिक प्रेमका तो किसीको ईश्वरकी मस्तीका। फिर अगर यह कहा जाए तो नरकमे केवल

---

१. Translated by Whinfield–Maulana Shibli & Omar khayyam–page : 75.

२. वही–पृष्ठ : ७५.

प्रेमी और नशा करनेवाले ही जाते हैं तो ? हमारे खैयामका विचार है कि अगर यह सत्य है तो स्वर्ग रिक्त होगा —

मारा गूयद दोज़खी बाशद मस्त,
कौली अस्त ज़िलाफ दिल दरों नतवान बस्त,
गर आशिक व मस्त दोज़खी ख्वाहद बूद
फरदा बीनी बिहिश्त रा चूं कफे दस्त ।

(" Hell is the drunkards' lot, " they say to me,
A saying 'tis with which I can't agree,
If Hell exists for all who love and drink,
Then, empty as my palm Heaven will be)[१]

'जड-चेतनमें ईश्वरकी सत्ता है और हमें हर वस्तुके साथ अच्छी तरह पेश आना चाहिए' यह शिक्षा सदा सर्वदा बडे-बडे साधु-महात्मा देते रहे हैं और कीट पतगके प्रति भी हमारे मनमें दया-भाव जगाते रहे हैं। किन्तु हमारा कवि तो ज़मीन और मिट्टीमे भी उन प्राणोका स्पदन पाता है, मानो अभी भी उसमे पहलेके जीव सोये हुए हो जो जोरके प्रहारसे आहत हो उठेंगे। खैयाम कुम्हारके चाकपर चढी ई मिट्टीकी दर्दभरी रहस्यमय ध्वनिको इस तरह अंकित करता है कि "ज़रा धीरेसे, मैं भी कल तुम्हारी भाँति थी !"

दी कूज़ागरी बदीदम अदर बाज़ार,
बर ताज़ा गिली लकद हमीं जद बिसयार,
वाँ गिल बर ज़बाने हाल बा ऊमी गुफ्त,
मन हमचू तू बूद अम मरा नेंकूदार ।

(In market-place a potter, yesterday,
Such blows bestowed upon a lump of clay,
Methought, the wet clay cried in mystic tongue,
"I was like thee, be kind to me, I pray ")[२]

आरबेरी साहब खैयामको सूफी नही मानते। उनका कथन है कि सूफी तो क्या सूफियोंके मित्र भी नही माने जा सकते क्योकि

१. Translated by Whinfield- Maulana Shibli & Omar khayyam-page 75
२. वही–पृष्ठ ७९.

उनकी रचनाओंमे सूफियोंके प्रति भी व्यंग है।[१] किन्तु थामर राईट साहबने 'Life of Fitzgerald' मे अपने कॉवेल साहबसे मुलाकातके विषयमे लिखा है कि कॉवेल साहब इस मतके थे कि खैयाम सूफी हैं। उनके वार्तालापको संक्षेपमे यहाँ उद्धृत करना अनुचित न होगा। यह मुलाकात कैम्ब्रिजमें नवम्बर १९०१ की बात है।

लेखकने प्रोफेसर कॉवेलसे पूछा, "हम उमरकी रचनाओको बाह्य रूपमे स्वीकार करें या उनमे कुछ छिपा हुआ अर्थ भी है?"

उन्होने उत्तर दिया, "कविता रहस्यवादी है। मैं जब भारतमें था तब अनेक मुनशियोसे वार्तालापके पश्चात ही मैं इस निर्णयपर पहुँचा हूँ, वे सभी उसके बाह्य अर्थके विरोधी हैं।"

मैंने कहा, "उमरकी शराबकी प्रशसाको समझना कठिन है।"

प्रोफेसर कॉवेलने मुसकराते हुए उत्तर दिया, "शराबकी मस्तीका अर्थ अलौकिक प्रेम है।"

"तो क्या उमर सूफी था, और न कि काफिर (नास्तिक), जैसा कि उसे समझा जाता है?"

"निस्सदेह उमर सूफी था।"

"किंतु फिट्ज़जेरल्ड आपसे सहमत नही।"

"कभी-कभी वह इस तथ्यको अस्वीकार करता है पर हमेशा नही। वह अभी तक कोई निर्णय नही बना पाया।"[२]

किंतु इसमे सदेह नही कि खैयामकी फिलासाफी (दर्शन) से फिट्ज़जेरल्ड बहुत अधिक प्रभावित रहे हैं। उन्होंने प्रोफेसर कॉवेलको अपने दिनाक २०-३-१८५७ के पत्रमे हाफिज़ एव खैयामकी बुलबुल एव गुलाबके फूलोकी दुहरावटका उल्लेख करते हुए यह स्वीकार ही कर लिया है कि "दूसरेकी फिलासाफी ऐसी है जो जीवनमें कभी असफल प्रतीत नही होती। आज बीत गयी है....."[३]

---

१. Omar Khayyam– A new version based upon recent discoveries– A J Arberry–1952 Edn. page : 26–27.

२. The Romance of the Rubaiyat– A. J. Arberry 1959 Edn. page : 18–Preliminary Essay.

३. वही–पृष्ठ : ५४ भूमिका

यहाँपर मैं 'सूफी' की संक्षिप्त व्याख्यासे इस वर्णनको बंद करके खैयामके अँग्रेजी अनुवादों और विशेष रूपसे फिट्जजेरल्डके अनुवादकी ओर बढ़ूंगा जिसके द्वारा ही यह धारा भारतमें प्रवेश पा सकी। "सूफी हम ऐसे रहस्यवादीको कह सकते हैं जो ईश्वरके मिलन एवं उसकी सर्वव्यापकतामें विश्वास रखता है और जिसने अपने लिए दुनिया छोड दी है। सूफी अधिकतर आजाद खयाल (उदार विचार-वाले) होते हैं और विश्वासोंके अनुरूप बने धार्मिक सम्प्रदायोंकी संकुचित वृत्तिसे दूर रहते हैं। वे ईश्वरसे ईश्वरके लिए ही प्रेम करते हैं, उन्हें स्वर्गके लालच एवं नरकका भय नहीं रहता। वे प्याले, साकी, शराब एवं प्रेयसी (माशूक) की बातें करते हैं, किंतु उनकी भाषा रूपकात्मक ही होती है, वे दैवी-अलौकिक आनंदमें इतने तल्लीन रहते हैं कि उन्हें अपनी ही सुध नहीं रहती तो वे दुनियाकी सुध क्या रखेंगे कि कोई उनके विषयमें क्या कहता है। उनकी मधुशाला इबादत (पूजा) का स्थान होती है, उनका साकी बुद्धिमान व्यक्ति या गुरु होता है जो उनका मार्गदर्शन करता है, उनकी शराब अलौकिक आध्यात्मिक ज्ञान है और उनका माशूक स्वयं खुदा होता है।" क्या इन सारी बातोंको हम खैयामके जीवनमें यथारूप उतरा नहीं पाते?

खैयामकी रचनाओंका अँग्रेजी अनुवाद फिट्जजरल्डके द्वारा ही आरंभ हुआ माना जा सकता है हालाँकि उनको फारसी सिखानेवाले प्रोफेसर कॉवेल्ने भी खैयामकी कुछ रुबाइयोंका अनुवाद किया है। प्रोफेसर कॉवेल्से ही प्रेरणा व पाण्डुलिपियाँ पाकर फारसी सीखकर एडवर्ड फिटजेरल्ड अनुवादके क्षेत्रमें उतरे। आरंभमें भले ही उन्होंने खैयामकी रचनाओंको रहस्यवादी स्वीकारनेसे इनकार किया हो पर वे अपनेको अधिक समय उस तथ्यसे दूर नहीं रख सके कि खैयाम सूफी थे।

फिट्जजेरल्ड खैयाममें इतना तल्लीन हो गया था कि वह अपनेको उससे अलग अनुभव ही नहीं करता था और खैयामकी वे शताब्दियों पूर्वकी अनुभूतियाँ उसके जीवनमें जग-सी उठी थीं और उन्होंने प्रोफेसर कॉवेलको एक पत्रमें लिखा भी था, " In truth, I take old Omar rather as my property than yours he and I are

more akin, are we not ?"[१] (वास्तवमे मैं उमरको आपकी अपेक्षा अपना अधिक मानता हूँ · हम वास्तवमे समान हैं, क्या यह सत्य नही ?)

फिट्ज़जेरल्डने अनुवादमे बड़े ही परिश्रम उठाये थे और वह उन्होंने स्वात नुखायकी भावनासे ही किया था। वह तो उमरकी अनुभूतिको स्वय अनुभव करने लगा था। अत वह लिखता ही जा रहा था और जो भी उसने लिखा उसे प्रकाशित करवानेका प्रयत्न भी किया हालाँकि उसे उससे कोई लाभ नही हुआ, उल्टे घाटा ही उठाना पड़ा किंतु उसने यह सब इस भावनासे किया कि किसी तरह उनकी रचना जीवित रह जाए।[२]

शुरूमे तो फिट्ज़जेरल्डकी रचना कोई प्रसिद्धि नही पा सकी और यह तो एक घटना ही थी जिसने उसे प्रकाशमे लाकर यूरोप ही नहीं अन्य देशोंमे भी स्थायित्व दे दिया।

जब तक पाडुलिपि जो अब कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी ग्रथालयमे सुरक्षित है, जिसका लिपि काल ६०४ हिजरी सन् माना जाता है जो कैवल खैयामकी मृत्युके ७५ वर्ष बादकी तैयार की हुई है, का पता नही लगा था, तब तक, आरबेरी साहब भी फिट्ज़जेरल्डकी रचनाकी बडी तारीफ करते रहे किंतु अब इस पाडुलिपिकी उपलब्धिपर उनके विचार कुछ बदले हैं। उन्होने उस पाडुलिपिका अनुवाद कलात्मक-ताको दूर रखकर किया है ताकि खैयामके मूल भाव किसी तरह अव्यक्त न रह जाएँ।

इससे पूर्व वे फिट्ज़जेरल्डकी रचनाकी लोकप्रियताके विषयमे लिखते है कि, "There can scarcely be a house in all Britain which has not at some time possessed a

---

१ The Romance of the Rubaiyat–A. J Arberry page . 92 Introduction

२. वही–पृष्ठ ९६–९७

copy in some shape or form"[1] (ब्रिटनमें ऐसा कोई परिवार पाया जाना मुश्किल है जहाँ इसकी प्रति किसी समय किसी न किसी रूपमें न रही हो।)

आज आरबेरी साहब कहते हैं कि फिटजेरल्डकी रचना भले ही अपनेमें अनूठी हो पर ख़ैयामका पहुँच उसमें कई गुना अधिक ऊँची थी और फिटजरल्ड उसकी ऊँचाईको पहुँच नहीं पाया है। अनुवाद तो अनुवाद होता ही है और अनुवादकको अपना ओरसे परिवर्तनका कुछ अधिकार तो होता ही है वह अगर शब्दश: अनुवाद करने बैठे तो वह टेकनीकल (तात्विक) अनुवाद भले ही बने पर उसमें जान नहीं आ पाती। जो भी हो फिटजजरल्डकी रचना अपनेमें अद्वितीय क्या न हो पर ख़ैयामकी मौलिक विचार धाराको परखनेके लिए फिटजजेरल्डको माध्यम नहीं बनाया जा सकता। उनके लिए तो हमें ख़ैयामकी मूल रचनाको देखना ही होगा और अगर उसको अँग्रेजीके माध्यमसे देखना समझना ही आवश्यक हो तो उसकी शब्दश: अनुवाद प्रणाली ही योग्य साबित होगी।[2]

हमारे लिए, इसके लिए दो अनुवाद उपयोगी होंगे। एक तो व्हिनफील्ड साहबका व दूसरा आरबरी साहबका। वैसे तो गार्डनर साहबने भी रुबाइयोंका अनुवाद किया है जो १८९७ में प्रकाशित हुआ था। अत: अब हम कुछ ख़ैयामकी मूल रुबाइयोंको आरबरी साहब एवं फिटजजरल्डके आधारपर परखकर देखेंगे कि फिटजजरल्ड कहाँ तक ख़ैयामको प्रस्तुत करनेमें सफल हुए हैं।

यहाँ यह भी स्मरण रखना होगा कि फिटजजरल्ड कवि था और उसने ख़ैयामकी विचारधाराको ग्रहण कर उसका अनुभव स्वयं किया है और फिर उसे शब्दोंमें अभिव्यक्त किया है। वह अनुवादक मात्र नहीं। इसके लिए हम ऊपर उनकी स्वीकारोक्ति दे आये हैं कि किस

---

१ Omar Khayyam– A new version based upon recent discoveries– A. J Arberry– page 7 Introduction

२ वही–पृष्ठ १८–२०

तरह वे अपनेको खैयाममे खो चुके हैं। दूसरी बात यह भी है कि आजके नये-नये अनुसधानोंके आधारपर, नयी पाडुलिपियोंकी प्राप्तिपर ही आरबेरी साहब आज फिट्जजेरल्डकी रचनाको त्रुटिपूर्ण मान रहे हैं और ईरानमे खैयामकी प्रसिद्धिको स्वीकार रहे हैं, अन्यथा वह तो उनका भी कथन था कि खैयामकी प्रसिद्धिका कारण एक मात्र फिट्जजेरल्ड ही थे।

हम जानते हैं कि फिटजजेरल्डने खैयामकी रचनामे आध्यात्मिकता को अधिकाशमे नही स्वीकारा है। एक कारण यह भी है कि कही-कही वे आध्यामिक रचनाओको लौकिक रूप देनेमे पूर्णतया सफल नही हुए हैं। एक उदाहरण लीजिए—

गर दस्त दिहद ज मगजे गदुम नानी,
व अज्ञ मए दु मनी ज गूसफदी रानी,
बा दिलवर की निशस्त दर वीरानी,
ऐशीस्त की नीस्त हद्दे हर सुलतानी।

इसका साधारण अर्थ जो आरबेरी साहबने प्रस्तुत किया है उसे भी देखिए —

If hand should give (i e if there should be at hand)
of the pith of wheat a loaf,
And of wine a two-maunder (jug), of a sheep thigh,
With a little sweet heart seated in desolation,
A pleasure it is that is not the attainment of
any sultan. [२]

अब फिट्जजेरल्डकी पक्तियाँ देखिए। फिर हम दोनोंका अतर स्पष्ट करेंगे —

A book of verses underneath the bough,
A jug of wine, a loaf of bread, and Thou,
Beside me singing in the wilderness,
Oh, wilderness were paradise enow. [३]

---

१. २. ३ Omar khayyam- A new version based upon recent discoveries- A. J Arberry- page : 22- Introduction.

उपरोक्त पक्तियोसे स्पष्ट हो जाता है कि फिटजजरल्डकी पक्तियों-मे आयी हुई काव्य पुस्तक, गाती हुई प्रेयसीका उल्लेख उनकी मौलिक भावना है जा खैयामका अभिप्राय व्यक्त नही कर पाती। यही कारण है कि खैयामको आरबेरी साहब तथा अन्य लोगोंने फिटजजरल्डके प्रकाशमे देखकर ही पूरा नही पहचाना था कि वे सूफी हैं। इसमे शक नहीं कि फिटजजरल्डकी पक्तियोंमे काव्यात्मकताके सभी लक्षण विद्यमान हैं और इसीलिए तो वे इतनी प्रसिद्धि पा सके और ह्विन फील्ड जिसने शब्दश अनुवाद प्रस्तुत किया ख्याति न पा सका। हम एक और उदाहरणके बाद इस परिच्छेदको बद करेंगे। खैयामकी पक्तियां —

> सर मस्त ब मैखानई गुजर करदम दूश,
> पीरी दीदम मस्त व सबूई बर दूश,
> गुफतम कि चिरा न बारी अज खुदा शरम,
> गुफता कि करीमस्त खुदा बादा बिनूश। [१]

आरबरी साहबका अनुवाद देखिए —

> Drunken by the wine house I passed yester night
> An old man I saw drunk and a pitcher on
> (his) shouder
> I said, why hast thou not before God shame?"
> He said, " Generous is God, drink wine ! [२]

अब फिटजजरल्डकी पक्तियाँ भी देखिए —

> And lately by the Tavern Door a gape,
> Came stealing through the Dusk an Angel shape,
> Bearing a Vessel on his shoulder and
> *He hid me taste of it, and twas–the Grape !* [३]

---

१ Omar khayyam– A J Arberry– Introduction page 24

२ वही–पृष्ठ २४ भूमिका

खैयामकी वह विचारधारा फिट्ज़जेरल्डमे उतर नही पायी, बिल्कुल ही नही। कहाँ वह भाव कि ईश्वरकी उदारताकी परख करनेके हेतु शराब पिओ ताकि विदित हो कि वह कितना दयामय है और कहाँ यह कि उस फरिश्तेने मुझे अपनी सुराहीसे जो रस पिलाया वह अगूर-रस था।

इन उदाहरणोसे हम यह कदापि नही कहना चाहते कि फिट्ज़जेरल्डने खैयामको बिल्कुल ही नही पहचाना। उन्होंने तो खैयामको आत्मसात कर लिया था पर अपने कवि स्वातन्त्र्यके आधारपर उसे अभिव्यक्त किया है, अनुवादकके रूपमे नही। आरबेरी साहब भी उन्हे बिल्कुल ही बहका नहीं मानते।[1] उन्होंने उसी पुस्तकमे पृष्ठ ४२ पर कहा है —

"He was fully justified of his art, by the Persian perfume he redistilled into English verse"

(वे अपनी कलाके प्रति पूर्ण सजग थे, ईमानदार थे और उन्होने ईरानके इतरको अँग्रेजी कवितामे नये सिरेसे साफ करके पेश किया है।)

भारतमें हालावादी कविता (खैयामके अनुवाद एव मौलिक रचनाएँ)

भारतमे सर्वप्रथम खैयामकी रचनाको प्रस्तुत करनेवाले थे मिरज़ा कलीच बेग, हैदराबाद सिंधके डिप्टी कलेक्टर जो स्वय एक उच्च कोटिके कवि एव साहित्यकार रहे हैं। उन्होंने सीधे फारसीसे खैयामकी १३० रुबाइयोको ईसवी सन् १९०४ मे छपवाकर प्रस्तुत किया और उसके लिए भूमिका भी लिखी।

उसके बाद पडित गिरधर शर्मा द्वारा खैयामकी रुबाइयाँ संस्कृतमे सन् १९२९ मे अनूदित हुईं। उन्होंने ही फिर १९३१ मे उसे हिंदीमे भी प्रस्तुत किया। इस समय तक हिंदीकी पत्र-पत्रिकाओंमे खैयामकी रुबाइयोके अनुवाद छपने लगे थे। पुस्तकाकार रूपमे रुबाइयोंके

[1] *Omar Khayyam—A. J. Arberry—Introduction Page 26*

अनुवाद हमे इस प्रकार मिले। सन् १९३१ मे बाबू मैथिलीशरण गुप्तजीका अनुवाद प्रकाश पुस्तकालय, कानपुरसे प्रकाशित हुआ। पंडित केशवप्रसाद पाठकका अनुवाद १९३१ में ही इंडियन प्रेस, जबलपुरसे प्रकाशित हुआ। १९३२ मे पंडित बलदेवप्रसाद मिश्रका अनुवाद मेहता पब्लिशिंग हाऊस, काशीसे प्रकाशित हुआ। १९३३ मे डॉ गयाप्रसाद गुप्तका अनुवाद हिंदी साहित्य भाण्डार, पटनासे प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद उन्होंने बंगलामें हुए अनुवादसे ही प्रस्तुत किया था। कविवर बच्चनका 'खैयामकी मधुशाला' नामका अनुवाद, सुषमा निकुंज, इलाहाबादसे १९३५ मे प्रकाशित हुआ। वैसे उनका अनुवाद १९३२ के लगभग तैयार हो गया था। कविवर सुमित्रानंदन पंतजीने श्री असगर गोण्डवीकी सहायतासे १९२९ मे खैयामकी रुबाइयोंका अनुवाद तैयार किया था जो 'मधु ज्वाल' के नामसे १९४१–४२ मे प्रकाशित हुआ और उन्होंने यह रचना कविवर 'बच्चन' को ही समर्पण की है जिन्हे वे इस धाराका अधिनायक अधिकारी कवि मानते हैं। सन् १९३७ मे श्री इकबाल सेहरका अनुवाद इंडियन प्रेस, प्रयागसे छपा। यह मूल फारसीसे किया हुआ अनुवाद है। १९३८ मे श्री रघुवंशलाल गुप्तका अनुवाद किताबिस्तान, प्रयागसे प्रकाशित हुआ। अतः हम देखते हैं कि १९३१ से लेकर १९३८ तक खैयामकी रचनाके अनुवाद हमे विभिन्न कवियो द्वारा प्राप्त हुए और मानो इन अनुवादोंने हिंदी साहित्यको नयी दिशाकी ओर मोड़ लिया। जब कि मैथिलीशरण गुप्त जैसे भक्त कवि इससे प्रभावित हुए बिना न रहे तब अन्य लोगोंकी बात ही क्या है। इन अनुवादोंसे प्रेरित होकर हिंदी साहित्यमे हालावादके युगने जन्म लिया। हम उसे हालावाद इसलिए ही कहना चाहते हैं कि कवियोंने इस युगमे हालाको अपना माध्यम बनाकर अपने विचारोंकी अभिव्यक्ति की है। उन दिनों सरस्वती, माधुरी, सुधा, विशाल भारत, मनोरमा, अभ्युदय, प्रताप आदिमे स्फुट रचनाएँ छपने लगी। हालाके माध्यमसे राजनैतिक भावनाओंकी अभिव्यक्ति भी कवियोंने की है। उदाहरण हम देखेंगे किंतु इस युगमे हाला अभिव्यक्तिका माध्यम बन चुकी थी, इसीलिए इस युगका नाम हालावाद पड़ा।

हालावादकी इस धारामे मौलिक कवियोके रूपमे श्री. पद्मकात मालवीय, जगदबाप्रसाद मिश्र 'हितैषी', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' एव कविवर बच्चनके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कविवर अज्ञेयने भी कुछ रचनाएँ इस शैलीमे लिखी हैं। पद्मकात मालवीय ही प्रथम व्यक्ति हैं जिनकी 'प्याला' नामक रचना उन्हीके अभ्युदय प्रेससे प्रकाशित हुई। कविवर बच्चनको छोडकर अन्य कवियोकी स्फुट रचनाएँ ही पत्र-पत्रिकाओमे प्रकाशित होती रहीं। मालवीयजी भी 'प्याला' के बाद खामोश हो गये। अत. इस धारामे अकेले बच्चन ही रह गये जो एक युग तक इस धाराका अस्तित्व बनाये रहे और अपनी रचनाओकी सरलता, सरसताके कारण इस युगको जनप्रिय युग बनानेमे पूर्ण रीतिसे सफल हुए।

वादका बधन साहित्यकारकी सबसे बडी कमजोरी है कि वह किसी वादका सहारा लेकर बढे और वादके बधनमे आबद्ध कवि अपनी भावनाओकी सहज अभिव्यक्ति नही कर सकता। जब कवि हृदयकी सहज आस्थाके साथ काव्य प्रणयन करता है तभी उसकी रचना युगातकारी तत्त्वोंसे सपन्न हो जाती है। बच्चनने वादके लिए रचना नही की पर उसका व्यक्तित्व स्वय इतना सफल है कि उसके पीछे-पीछे एक वाद चल पडा जो उनकी स्वच्छद मादकताके कारण हालावादके नामसे सबोधित हुआ। यह तो मानी हुई बात है कि साहित्यकी शक्ति और तीव्रता स्रष्टाके अहकी शक्ति एव तीव्रतापर निर्भर करती है। दुर्बल अह अथवा किसी भी कारणसे दबा हुआ अह, यहाँ तक कि घुला हुआ अह भी आर्द्रताकी ही सृष्टि कर पाता है, शक्तिकी नही। हमारा कवि साहित्यको सामाजिक चेतना नही मानता, वह उसे व्यक्तिगत साधना ही मानता रहा है। उनकी उक्ति देखिए, "यह तो निर्विवाद है कि कलामे अभिव्यक्ति पानेवाली प्रत्येक अनुभूति व्यक्तिगत ही होती है, पर कलामे अभिव्यजित होने योग्य प्रत्येक अनुभूतिको कुछ ऐसा भी होना पडता है जो सार्वजनिक हो।"[१] और उनकी 'कविता उपवनके माली' कविताकी ये पक्तियाँ भी इस भावनाको ही परिचायक हैं :—

१. बुद्ध और नाचघर—भूमिका पृष्ठ २०–२१.

तुझसे इस जगसे क्या नाता,
तूने अपनी सृष्टि बना ली ।[1]

हमारे कविने युगकी चेतनाओसे प्रभावित होनेकी बातको तो माना है पर उसको व्यक्तित्वकी अभिव्यक्तिमे सहायक माना है जिसके कारण व्यक्तित्वमें सबलता आती है । उन्हींके शब्दोंमे, "युग-युगकी घटनाओ, युगकी विचार-धाराओंका जो प्रभाव कला-कृतियोपर पडता है उससे कोई इन्कार नही कर सकता, परतु कलाकारका निजी व्यक्तित्व भी एक महत्ता रखता है। सच तो यह है कि अपने व्यक्तित्वम कुछ विशेष रखनेके कारण ही वह कलाकार होता है । फिर युग भी व्यक्तिको प्रभावित करके ही कलाका प्रभाव दिखला सकता है।"[2] हम इस बातको कविके निजीत्वका या व्यक्तित्वका दोष नही मान सकते और केवल इस आधारपर हम उसकी रचनाको परहितायकी कल्पनासे वचित एव स्वात सुखाय तक सीमित नही मान सकते। वस्तुस्थिति तो यह है कि साहित्य वैयक्तिक चेतनाकी ही उपज है न कि सामाजिक चेतनाकी । साहित्य-कार या कोई भी व्यक्ति सवप्रथम व्यक्ति है सामाजिक प्राणी बादमे, अत उसके व्यक्तित्वको उपक्षाकी दृष्टिसे नही देखा जा सकता। व्यक्ति-व्यक्तिकी अनुभूतिके स्तरमे अतर सभव है पर अनुभवकी प्रकृतिमे कोई मौलिक भद नही । सुख-दुखकी दो भावनाओंमें समस्त विश्व आवद्ध है और इन दोनोकी अनुभूति मानव मात्रको अपने जीवनमें होती ही है। कविको निजी अनुभूतिको वह उस अवस्थाके अनुभवमे अपनी ही मानता है । यही तो साहित्यम साधारणीकरणकी आवश्यकता पडती है ।

हालावादके अन्य कवि

मैं सर्वप्रथम हालावादके अन्य कविया एव उनके काव्योका सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर अपने कविके काव्य सिद्धान्तोंके प्रकाशमें, जिनपर उन्होंने समय-समयपर अपना मत व्यक्त किया है अवलोकन

१ प्रारंभिक रचनाएँ–भाग २ पृष्ठ १२७
२ पल्लविनी एक दृष्टिकोण–पृष्ठ ६

करते हुए उसका हिंदी-साहित्यमे स्थान निश्चित करूँगा। हमारा विशेष प्रयत्न यहाँ कविवर बच्चनकी विवेचना ही है किंतु पूर्व भूमिका आवश्यक हो जाती है, युगपरिचय, अन्य कलाकारोंका परिचय आवश्यक हो जाता है, फिर भी मैं यहाँ अन्य कवियोंके अनुवादोकी बात छोडकर उनकी हालावादी मौलिक रचनाओपर प्रकाश डालूँगा।

कविवर पद्मकात मालवीयजीने अपनी रचना 'प्याला' मे मधुशालाके रूपमे नश्वर जगतका रूप बडे ही सुन्दर रूपसे अकित किया है। संसारका कार्यक्रम तो अविराम गतिसे चलता ही रहता है। एक आता है, एक जाता है, किसीके आगमनपर गीत गाये जाते हैं तो किसीके गमनपर रुदन मचा रहता है। जीवनकी हाला पीनी तो सबको पडती है पर कोई हँसकर पीता है और कोई रोकर, पर रोकर भी तो उन्हें पीनी ही पडती है, वे उससे भाग कहाँ सकते हैं? यहाँ इच्छा-अनिच्छाका प्रश्न ही नही उठता। यहाँ तो एक प्यालेमे है अमृत, दूसरेमे जहर और 'जो तुझे मालिक पिलाए, पीनेवाले तू पिये जा' की ही प्रधानता है। कभी आशाओमे निराशाका ज्वार व्यक्तिके जीवनको इतना अधिक प्रभावित करता है कि वह अपना शरीररूपी प्याला फेंककर तोडनेपर आमादा हो जाता है। ससारकी निराशा व्यक्तिको आत्मरत भी बना लेती है और चिंतनका भाव जगता है तब हृदयमे समस्त विश्व प्रतिबिंबित हो उठता है, वह अनुभव करने लगता है कि मैं ही पीनेवाला, मैं ही साकी, मैं ही हाला, मैं ही मधुशाला हूँ। यह ससार नश्वर होते हुए भी तो शाश्वत है, यहाँपर जीवनके तीनो रस, अमृत, विष, हाला बने ही रहेंगे, हम रहे न रहे। पीनेवाला भला सुध ही क्या रखता है? पीकर वह यह भूल जाता है कि वह मदिरालयमे है या मदिरालय उसमे? (पिंडमे ब्रह्माण्डकी कल्पना चिंतनसे विकसित होती है—कबीरके शब्दोंमे, "कुम्भमे जल और जलमें कुम्भ भीतर बाहर पानी" दिखाई देने लगता है।) देखिए, हमारा कवि क्या कहता है :—

यहाँ लगा रहता है हरदम आना जाना।
किंतु भीड है यही, वही है रोना-गाना॥

कुछ तो हँस-हँसकर पीते हैं कुछ रो रोकर ।
कुछ करनेपर उनका चलता नहीं बहाना ।।
देखो मेरी मधुशाला है कितनी सुदर ।
पीनेवालोंका मेला लगा है निरतर ।।
इच्छा हो या नहीं यहाँका नियम यही है ।
आकर पीना ही पडता है इसके अदर ।।
जग-मधुशालेमें पडितजी ! भूल न जाना ।
पीना होगा यहाँ, चलेगा नहीं बहाना ।।
विष हो या हो हाला चुपके पीना होगा ।
सभव नहीं कदापि यहाँ आकर बच जाना ।।
जलती है मेरे उरमें वह भीषण ज्वाला ।
कभी चूमता, कभी फेंक देता हू प्याला ।।
कभी ठिठककर खडा कभी बढकर मैं आगे ।
गिर गिर पडता देख देख तममय मधुशाला ।
मेरी अपनी छोटी-सी है उर मधुशाला ।
जिसमें म साकी हूँ म ही पीनेवाला ।।
पडितजी ! मेरा पडित मन तो कहता है ।
चिंता तज पीते जाओ बस प्याले पर प्याला ।।
थको न ढाले जाओ बस प्याले पर प्याला ।
कलकी चिंता करो न देगा देनेवाला ।।
सबको चलना है रहना है सिर्फ यहाँ पर ।
साकी और हलाहल हाला यह मधुशाला ।।
छलक रही है साकीको आँखोंमें हाला ।
देख देखकर बना उसे मैं पीनेवाला ।।
पीते-पीते मुझे ध्यान ही रहा नहीं कुछ ।
म मधुशालेमें हू या मुझमें मधुशाला ।
भरी हुई है तुम्हारे दृगमें हाला
कुल शरीर तुम्हारा हो रहा मधुशाला ।।

पडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तो विप्लवके गीतोंके गायकके रूपमे ही हमारे समक्ष अधिक आये हैं पर उन्होंने प्रणयपर भी सुदर एवं मुक्तकंठ कविताएँ लिखी हैं। उनकी कल्पना शक्तिने काव्यके ऐसे मनोरम रूपोका विधान किया है कि मन अनायास ही उधर घूम पडता है। उन्होंने शृगारके विप्रलंभ पक्षका बडा ही सजीव एवं विस्तृत वर्णन किया है। इस विप्रलभमे एक विरही जीवात्माकी परमात्माके प्रति तडपके भी दर्शन होते हैं। हमारे कविने भी हालापर कविता लिखी है। यहाँ भी उनकी मौलिकता स्पष्टतया लक्षित होगी। उनकी 'साकी' कवितामें कविकी मस्ती, उसकी अविकल पिपासा, उसकी भाव तल्लीनता, सदाशयता एव सार्वभौम हितचितनकी भावनाके अवलोकन होते हैं।

मनुष्यका मन अपना अभीप्ट पानेके लिए कितना विह्वल रहता है! वह एक पलका भी विलब असह्य ही अनुभव करते हुए कह बैठता है—

साकी! मन-घन-गन घिर आए, उमडी श्याम मेघमाला,
अब कैसा विलब? तू भी भर-भर ला गहरी गुल्लाला।

और यह प्यास कितनी भयकर है! मन तरस रहा है। जीवनके रस विना शरीररूपी प्याला भला क्या मूल्य रखता है? इसलिए तो शायद प्रत्येक रिक्त तन, हाला रूपी प्राणोका सचार चाहता है जिससे उसमे पुन. जीवन लहरा उठे, नयी भावनाएँ जगें, हृदय आनद-विभोर हो उठे, निराशाके बादल घट जाएँ। तो साकी! फिर विलब कैसा?—

तनके रोम-रोम पुलकित हों,
लोचन दोनों अरुण चकित हो,
नस-नस नव झंकार कर उठे,
हृदय विकम्पित हो हुलसित हो;
कबसे तडप रहे हैं—खाली पडा हमारा यह प्याला,
अब कैसा विलंब? साकी! भर भर तू ला अपनी हाला।

जीवन स्वयं अपनेमें मस्ती रखता है। जिस जीवनमें मस्ती न हो, जो तन्मयतासे अपने गंतव्यकी ओर आगे बढ़ना नहीं जानता, कदम-कदमपर जिसे दूसरोंकी आलोचना-प्रत्यालोचनाकी चिंता रहती है, वे भला कब मंजिलको पाते हैं ? अतः हमारा कवि तो चाहता है कि यह प्राणोंकी हाला इतनी मात्रामें पी ली जाए कि फिर दुनियाकी चिंता न रहे और साकीका काम तो मात्र पिलाए जाना है, यह उसका काम नहीं कि वह हर पात्रपर पूछने लगे कि और दूं ? इसमें तो साकी (ईश्वर) (गुरु) की ही हेठी होती है, उसे तो बस, तब तक पिलाए जाना है जब तक हमारे भाग्यमें मीना बदा है। फिर विलंब कैसा ?

> और-और मत पूछ, दिये जा
> मुंह मांगे वरदान लिये जा,
> तू बस, इतना ही कह साकी–
> और पिए जा ! और पिए जा !!
> हम अलमस्त देखने आये हैं तेरी यह मधुशाला,
> अब कैसा विलंब ! साकी भर भर ला तन्मयता हाला।

पीनेवाले तो बेढब होते ही हैं उनके ऊपर नियमका, नीतिका बंधन असंभव ही तो है। वे तो चाहते हैं कि बस, पीते जाएं। पीनेवाले, पिलानेवालेका अंतर विलीन होता जाए, बीचका आवरण उठ जाए (साधक अपने प्रियतमका सामीप्य पाता जाए और दोनोंका अंतर नष्ट होता जाए)। उनके सामने ज्ञान, पूजा, पोथी तो ढकोसला दिखायी देते हैं। प्रेमके समक्ष भला इनका मूल्य भी क्या है ? कबीरने भी तो कहा था 'एकै अच्छर प्रमका पढ़े सो पंडित होय'। देखिए, हमारा कवि कहता है —

> बड़े विकट हम पीनेवाले
> तेरे गृह आये मतवाले,
> इसमें क्या संकोच ? लाज क्या ?
> भर-भर ला प्यालेपर प्याले।
> हमसे बे-ढब प्यालोंसे पड़ गया आज तेरा पाला,

अब कैसा विलंब ? साकी भर-भर ला तू अपनी हाला।
हो जाने दे गर्क नशेमें,
मत आने दे फर्क नशेमें,
ज्ञान-ध्यान-पूजा पोथीके—
फट जाने दे वर्क नशेमें!
ऐसी पिला कि विश्व हो उठे एक बार तो मतवाला,
अब कैसा विलंब ? साकी भर-भर ला तन्मयता हाला।

कवि साकीसे प्रार्थना करता है कि वह उस मादक मदिराकी सुगंधको पूरे विश्वमें फैला दे जिसमें जग सराबोर हो जाए, छल-छल, कल-कल करते यह धारा विश्वव्यापिनी बन जाए, सारा विश्व इसमें उतराने लगे, बूँद-बूँदसे क्या होनेवाला है ? एक-दो सुराहियोंसे क्या होनेवाला है ? यह तो अविकल पिपासा है जिसके लिए तो मय भी अमर्यादित होनी चाहिए:—

तू फैला दे मादक परिमल,
जगमें उठे मदिर रस छल-छल,
अतल-वितल-चल-अचल जगत्में,
मदिरा झलक उठे झल-झल-झल
कलकल—छलछल करती हिमतलसे उमड़े मदिरावाला,
अब कैसा विलंब ? साकी भर-भर ला तू अपनी हाला।
कूज़े-दो-कूज़ेमें बुझनेवाली मेरी प्यास नहीं,
बार-बार ला-ला कहनेका समय नहीं, अभ्यास नहीं।
अरे, बहा दे अविरल धारा,
बूँद-बूँदका कौन सहारा ?
मन भर जाय जिया उतराये
डूबे जग साराका सारा
ऐसी गहरी, ऐसी लहराती ढलवा दे गुल्लाला,
अब कैसा विलंब ? साकी ढरका दे तन्मयता हाला।

कवि हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' ने भी इस दिशामें कदम उठाया था। उनकी कवितामें एक व्याकुल हृदयकी पुकार है जो

उसमें सजीवता भर देती है। उनके विषयमें डॉ इद्रनाथ मदानने अपने शोध प्रबंध " Modern Hindi Literature " (आधुनिक हिंदी साहित्य) में पृष्ठ ६९ पर लिखा है कि " हृदयेश प्रधानतया वेदना और विषादके कवि हैं . . । वेदनाकी गहरी टीसको भुलानेके लिए उन्होंने मादक मदिरा, विस्मृति-प्रतीक मदिराके यशोगान गाये हैं। उन्होने उमर खैयामके स्वरको ध्वनित किया है। साकी और सुरा सुन्दरी कविताएँ जीवनकी नश्वरता, क्षण भंगुरताको व्यक्त करती हुई आनंदी प्रवृत्तिकी समर्थक हैं।"[1]

यहाँ मैं दो शब्द जोडना अनिवार्य मानता हूँ कि हमारे विद्व डॉ इन्द्रनाथ मदानजीने खैयामके दर्शनको ठीक न समझकर मात्र आनंदी प्रवृत्ति– एशआराममय जीवनमें आस्था रखनेवाला मानकर उसकी तुलनामें हृदयेशकी कविताको रखा है जो उन जैसे विद्वानके लिए उचित नही। हम यहाँ हृदयेशकी रचनाके कुछ उदाहरण लेंगे। हृदयेशजीकी कुछ कविताओंमें आध्यात्मिकताका पुट अवश्य दिखाई देता है वहाँ अगर हम उनकी तुलना खैयामकी रचनासे करें तो कोई आपत्ति नही होगी पर हमारे डॉक्टर साहबने वहाँ भी मेरी दृष्टिमें हृदयेशजीको *आनंदी-उपभोगवादी कवि* बताकर उनके प्रति अन्याय ही किया है।

विरही जन घन घटाओंको देखकर अधिक विचलित होते हैं। न जाने विरही यक्षकी स्मृतिमें या वास्तवमें बादल मनकी व्यथाके परिचायक बनकर जीवनको अंधकारमय दिखाते हैं और पीडा बढ

---

1 *Hridyesh is essentially a poet of melancholy and despair* As a consequence of this deep melancholy, he has sung the praise of wine which is a symbol of forgetfulness The Omar khayyam note has been sounded by him Saki and Sura Sundri express the transitoriness and brevity of life and advocate the way of an epicure

— Modern Hindi Literature–page 69

उठती है। हमारा कवि भी इन उमडते-घुमडते बादलोमे अपनी पीडाको उमडते घुमडते पाकर साकीसे प्रार्थना करता है कि अब तो पिला दे, कजूसी छोड दे, और वक्त पर दगा न दे, अगर मदिरा समाप्त भी हो गयी हो तो बोतल (सुराही) मे नीचे जमी मैल ही दे दे.. हमारा कवि शायद यह सोचकर कि कुछ नही से कुछ ही महत्त्वपूर्ण है, ऐसी माँग कर बैठता है —

साकी ! अब तो तनिक पिला दे !
नभमें उमड घुमड घन छाये अवसरपर दगा न दे।
देख घटा, प्राण टूटा, छूटा धैर्य शीघ्र ढलवा दे,
त्याग कृपणता, हाँ, साकी ! भर प्यालापर प्याला दे।
यदि मधुपात्र हुआ रीता है तो तलछट ही ला दे,
गया खुमार, नयी फिरसे, गहरी गाढी ढुलका दे।

हृदयेशजीने अपनी रचना मधुरिमामे हालावादका भारतीयकरण किया है, उपमाएँ बदलकर भारतीय रख ली हैं। उन्होंने भगवान कृष्णकी रासलीलाका वर्णन करते हुए कान्हाके मुखपर मुरलीका प्याला रखा है पर यह प्याला पीनेवालेको ही नही, निरखनेवालोको भी उसी खुमारमे डुबो रहा है, श्रवण इस मधुका पान कर रहे हैं और बाँसुरी साकीवाला बनकर उसका वितरण कर रही है —

यमुना तटपर कदम-कुजमें खुली स्नेहकी मधुशाला,
श्याम सलोना-सा प्रिय प्यारा अधर मुरलियाका प्याला।
झूम रहे पीनेवाले भूल रहे हैं जगतीको,
प्रणय मदोत्पादक श्रवणोंमें सुखकर स्वर आसव ढाला।

रासलीला चलते गगन मण्डलमे चाँद चमक उठा है। उसकी चर्चित चाँदनी चारों ओर छिटक गयी है। श्याम घटाकी ओटसे शशिबाला झाँक झाँककर कर रूपी किरणोंसे चाँदनी-रूपी हालाको वितरित कर रही है। वह हाला नीचे उतरते-उतरते पेड-लताओंके झुरमुटसे छन-छनकर आ रही है। यही प्रतीत होता है कि वह विधुका प्याला छलककर विश्वको सराबोर कर रहा है। निस्सदेह

प्राकृतिक वर्णनका एक सुन्दर चित्र हालावादी परिपाटीमे कविने प्रस्तुत किया है — ।

> श्याम घटाओंके घूघटसे झांक रही है शशिबाला
> कर किरणोंकी कलधारोंमें ढाल रही ज्योत्स्ना हाला ।
> चाँदीका चद्रासव द्रुमदल लतिकाओंमें छन छनकर
> क्षितिपर छलका जाता है-अनुराग भरा विधुका प्याला ।

ऋतु-वर्णन भी मधुमे घुलकर कितना मोहक हो उठा है देखते ही बनता है। ऋतु-पति आज साकी बनकर आया है और उसने पुष्पोकी प्यालियोमे ओस-स्नेह हाला भरकर चमनको इतनी पिलायी है कि चमन मस्त होकर झूम उठा है और उसीकी मस्तीका परिचय पुष्प लहलहाते ला-ला की ध्वनि-सी दे रहे हों —

> खुली हुई है सुमन-प्यालियाँ चमन बना है पीनवाला,
> ढाल रही है ओस स्नेहसे रजत विनिर्मित हिम हाला ।
> साकी बनकर आया ऋतुपति-वन उपवन सबने ढाली,
> लाल पलाश लालिमामिस मदमाते हो कहते ला ला ।

आँखोमे आसवकी कल्पना तो चिर पुरातन है। भला नशीले नयनोका वर्णन, नशीली निगाहोका वर्णन किसने नही सुना? पर उन नशीली निगाहोका काम अगर स्वय नशमे चूर रहना होता तो कोई बात न थी पर वे तो मानो चलती फिरती मधुशाला-सी बन जाती हैं। जो कोई निगाहें मिलाता है चूर होता जाता है। उन आखोंसे तो कोई नही बच सकता। आखोंकी इस मस्ती भरी चचलताका जिगर मुरादाबादीने भी सुदर चित्र अकित किया है। वे बताते हैं कि इस आखोसे बचनेवाली (आखें बचनेवाली) से तो कोई भी न बचा, हरेकपर अपने दिलकी शक्तिके अनुरूप नशा तारी था —

> उस चश्मेमय फरोशसे कोई न बच सका
> सबको बकदरे-हौसलये दिल सुरुर था ।

हृदयेशजीने भी इस आंखोकी मधुशालाका बडा अनूठा चित्र मधुरिमाकी निम्न पक्तियोमे अकित किया है —

बहुत मुंह लगी हैं यह सबकी मोहक अंगूरीवाला,
निज रसके वशमें कर सबको उसने नाच नचा डाला।
धैर्यवानका धैर्य छुट गया देख तुम्हारा दृग प्याला,
हृदयवानका हृदय लुट गया देख गुलाबी दृग हाला।
मनस्वियोंके विजित हुए मन पलकोंसे छन-छन निकली,
तपस्वियोंके भग हुए तप मुस्कायी मदिरावाला।
पीनेसे न बचेगा कोई जो आएगा मधुशाला,
पडित हो या अविवेकी ज्ञानी हो या मतवाला।
थोडा बहुत चढाएगी रग निज अंगूरी आसवका,
जादूगरिनी मायामय है विश्वविजयिनी मधुबाला।

हृदयेशजी भी पीडाको ही कविताका मूल कारण माननेवाले कवि रहे हैं। जब हृदयमे वेदनाकी ज्वाला धधकने लगती है, अरमानोंके अगूर जब इस विरह-वह्निमे जिसमे आशाओंका ईंधन एव उपेक्षाके उपले भी मिल गये हैं, जलने लगते है, ठडी सांसो और अश्रुकणोंके छींटे दे देकर जिसे उफलनेसे रोका रखा गया ताकि वह व्यर्थ ही नष्ट न हो जाए, वही तो एक निराश व्यक्तिकी सर्वोत्तम हाला होती है। प्रेमरूपी साकी प्रेमके उपासकोको ऐसी ही निराशाकी मदिरा पीनेपर विवश करता है —

हिय हांडीमें चाह अगूरोको चुपचाप सडा डाला,
आशा ईंधन, उपल उपेक्षा सुलगा विरहवह्नि ज्वाला,
ठडी सांसों अश्रु सलिलके छींटेपर जो खिचती है—
वही पिलाता स्नेह साकिया नित्य निराशाकी हाला।

इसीलिए तो शायद हमारा कवि आशाओं, अरमानोंके छलकते प्यालोपर इतराना अच्छा नही मानता। न जाने वे कब ढलक जाएँ, छलक जाएँ, आजकी वह मधुर आशाओंकी मदिरा कल निराशाका विष बन जाए पर क्या तब पीनेसे इनकार करते बनेगा ? नहीं, यहाँ तो कोई चारा नही चलता चाहे वह मधुर पिलाए या कटु, चाहे वह जीवनमें सफलताका सुख भरे या विफलताका विषाद, कोई चारा नही चलता, हर स्थितिमें सतोषको ही सहारा बनाना होगा क्योंकि रोने-

चिल्लानेसे तो दुख दूर होंगे नही, उन्हें भुगतना पडेगा ही —

> इतराये न छलकते प्यालेपर अरमानोंकी सेना,
> मीठी पीकर हँस मत देना कडुयी पी मत रो देना,
> मालिक मधुशालाके अनुशासनमें ही चलना होगा
> पीनेवालेकी किस्मतमें सिर्फ लिखा पीना–लेना।

हम ऊपर कह आये हैं कि कविवर हृदयेशजीने कुछ आध्यात्मिक दृष्टिकोणवाली रचनाओंको भी हालावादी परपरामे प्रस्तुत किया है। यहाँ हम उनकी मधुरिमासे ही दो उदाहरण प्रस्तुत करेगे। निम्न-लिखित पदमे देखिए कि किस विध भक्तिकी हाला छनती है। हमारे कविने इसमे भक्ति, ज्ञान, चितन, योग सभीको मिला दिया है। उन्होंने अपनी हालाको 'द्राक्षारस हाला' कहा है, कही मोरारजीभाईके सौजन्यसे घबराकर तो नही ? पर शायद नही, क्योंकि रचना उससे बहुत पूर्वकी है। देखिए --

> हरिपद रज अनुरक्ति-कणोंसे निर्मित कर रसमय हाला
> मधुर भक्ति अगूर लतामें खिचवाकर मधुमय हाला,
> ध्यान नशामें डूब चुका हो दिलका कोना-कोना तक
> बहती हो हरिरस मधुधारा, तरणी हो पीनेवाला।
> खींच ध्यान अगूर लतासे, नाम द्राक्षारस हाला,
> विषय वासना ईंधन सुलगा, चितन भट्टीकी ज्वाला,
> इडा, पिंगला और सुषुम्नाके तारोंसे बीन बज,
> षटचक्रोंके, षटप्यालोंसे, सत पिएँ हरिरसहाला।

कविवर बच्चनकी ही भाँति उन्होंने निम्न पक्तियोंमे पीनेवाले, पिलानेवाले, मदिरा, मादकता सब कुछ उसीको माना है पर एक मौलिक अतर अतिम पक्तिमे है। यहाँ कवि जगतको जगदीश्वरका खिलौना बना रहा है जिसका निर्माण मानो उसने अपने आनदके लिए किया हो —

> वही सुरा है, वही पात्र है और वही पीनेवाला,
> वही पिलानेवाला साकी, वही नशा है मतवाला,

कुछ पीनेवाले सचेत, कुछ पीकर सुध-बुध भूल गये
खेल खेलाता है यह मालिक, रचकर दुनिया मधुशाला ।

हृदयेशजीने भारतकी पराधीनतामे पिसती जनताको देशभक्तिकी हाला पिलानेवाले शिवाजी एव प्रताप जैसे साकी पानेकी अपनी इच्छाको इन पक्तियोंमे रखा है —

अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, सहें शीत ओले पाला,
निर्धनताकी चिताओंने सुदृढ शरीर सुखा डाला,
मिले शिवा-सा साकी कोई या प्रताप-सा मतवाला,
और पिला दे दलित देशको सुख स्वतत्रताकी हाला ।

महाकवि अकबर इलाहाबादीने भी देशप्रेम-देशस्थितिको हालावादी परपरामे अदा किया है। अँग्रेजोने भारतको होमरूल नही दिया था उस वक्तपर उनकी निम्न पक्तियाँ उनके प्रति उनकी शिकायतका सुन्दर नमूना हैं —

यह कैसी बरम[1] है और कैसे इसके साकी हैं,
शराब हाथमें है और पिला नहीं सकते ।

जस्टिस आनद नारायण मुल्लाने कॉंग्रेसके शासनकी अपनी पार्टीके लोगोंको ही लाभान्वित करनेकी प्रवृत्तिपर इसी शैलीमे व्यग-बाण छोडा है —

निजामे[2] मयकदा[3] साकी बदलनेकी जरूरत है
हजारों हैं सफें[4] जिनमें न मय आयी न जाम आया ।

डॉ जगदीशनारायण त्रिपाठीजी लिखते हैं, "हिंदीका आधुनिकतम कवि भी हालावादी माध्यमके मोहसे मुक्त नही हो सका है। सच्चिदानद हीरानद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के 'इत्यलम्' काव्य ग्रथके 'बदी स्वप्न' खडमें सग्रहीत 'रक्त स्नात यह मेरा साकी' शीर्षक कविता हालावादी रचना है।"[5]

---

१ सभा – महफिल २ व्यवस्था ३ शराबखाना – मधुशाला
४ कतारें – पक्तियाँ
५ आधुनिक हिंदी कविताकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ–पृष्ठ ५४

कवि तृषातुर है, अत वह साकीसे सुरा-याचना करता है। साकी उसकी पुकार सुनकर मुँहपर अवगुंठन डाले थिरकते, नीरव, काँपते पदमोंसे प्रवेश करता है, पर कविका केवल कंठ ही प्यासा नहीं। उसकी तो आँखें भी रूप-दर्शनकी प्यासी हैं। अत वह उससे कहता है कि मधुशालासे मधुकी माँग है तो मधुबालासे उसके हुस्नेशराब–सौंदर्य सुधाकी भी माँग बनी हुई है। अत वह उससे आँखों द्वारा आँखोंके जाम उसकी झुकी हुई गर्दन रूपी सुराहीसे भर लेना चाहता है और स्पष्ट रूपसे बता देता है कि अगर पिपासा किसी विध परितृप्त हो सकती है तो चितवनकी तीव्र सुरासे ही –

> मैंने कहा, "कण्ठ सूखा है दे दे मुझे सुराका प्याला,
> मैं भी पीकर आज देख लूँ यह तेरी अंगूरी हाला।
> एक हाथमें सुरा पात्र ले एक हाथसे घूघट थामे,
> नीरव पग धरती कम्पित-सी, बढी चली आयी मधुबाला।
> मैंने कहा, "कण्ठ सूखा है, किंतु नयन भी तो हैं प्यासे
> एक माँग मधुशालासे है, किंतु दूसरी मधुबालासे।
> ग्रीवा तनिक झुकाकर भर भर आँखोंसे दो जाम उँडेलो–
> प्यास अगर मिट सकती है तो उस चितवनकी तीव्र सुरासे।

क्या यहाँ यह भाव नहीं जाग्रत होता कि हमारा कविवर 'अज्ञेय' सत्यका अवगुंठन हटाकर उसे वास्तविक रूपमें देखना चाहता है? पर सत्यसे सुंदरम् (कल्पना)का आवरण हटते ही कठोर वास्तविकता सत्यको कटु बना देती है उसका सारा सौंदर्य हरण कर देती है। अत उसे नित्य नूतन बनाये रखनेके लिए ही शायद मधुबालाका वह अवगुंठन हो, जिसे वह हटाना नहीं चाह रही और कविसे कह ही देती है कि बस, तुम मेरा रूप केवल प्रतिबिंब रूपमें ही निरख सकोग तुम्हें मेरी रूप शिखाकी छायापर ही संतोष करना होगा। आध्यात्मिक क्षत्रम भी यह बात कितनी सत्य है कि वह हमारा प्रीतम हमे नित्य छलनाके द्वारा छलता रहे अपने रूपके बदले अपनी छायासे प्रेम करनेके लिए विवश करता रहे और उससे दूर रहनेके कारण उसके प्रति हमारी पिपासा अधिकसे अधिक तीव्र होती रहे

और उसकी छाया उस तीव्रतामे गति भरती रहे और हम नित्य नूतन कल्पनाओंसे उसके रूपकी विविध कल्पनाएँ करते रहें। उसका प्रतिबिंब हमारे प्याले (शरीर) में भरी हुई मदिरा (जीवन) में छलक्ता रहे और हम मनमे उसको निरखनेका प्रयत्न करे। साकी मानो कविसे कह ही तो देता है –

मानो कहा, "यही है मेरी, मीठी कल्प सुराकी गगरी
इसमें झांकी देख सकोगे, मेरी रूप शिखाकी छाया।"

क्या ही नित्य पुरातन नित्य नूतन भाव –

मनमें बसी हुई है तस्वीर यारकी
गर्दन झुकाओ देख लो तस्वीर यारकी।

और हमारा कवि इसीपर सतोष करता हुआ (विवश ही) प्याला थामनेको अग्रसर होता है, सोचता हुआ कि शायद कठ एव हृदयकी पिपासा बुझ सकें, इसलिए वह उस प्यालेमे आँखें गडाकर देखने लगता है और उसका तन मन पुलकित हो उठता है और साकी भी मुस्करा देता है —

मै बोला, "अच्छा, ऐसे हो, सही अनोखे मेरे साकी,
मेरी साध यही है रह जाए, अरमान न मेरा बाकी–
प्यालेमें तेरी आँखोंकी, मस्त खुमारी भरी हुई है–
एक जाममें मिट जाएगी, प्यास कण्ठकी प्यास हियाकी।"
मैंने थाम लिया तब प्याला आतुरतासे हाथ बढाकर,
लगा देखने अपनी प्यासी, आँखें उसके बीच गडाकर।
पुलक उठा मेरा तन दर्शनके पहले ही उत्कण्ठासे
और अधर मधुबालाके भी खुले तनिक शायद मुसकाकर।"

किंतु आगे कविने कविताको राष्ट्रीयताका मोड दे दिया है। वह जब अपनी मधुबालाका मुख देखता है तो उसे सुख नही होता, उसे एक आघात-सा पहुँचता है क्योकि वह विधवाका चित्र है, विधवाका चित्र ही नही, वह तो दुखिया भारतमाताका चित्र है —

मैंने देखा, एक लजीले, बादल कत्सा मृदु अवगुंठन—
उसके पीछे—उफ कितनी, अनगिन मधुबालाओंका नर्तन !
मैंने देखा, मैंने देखा–इन्हीं दग्ध आंखोंसे देखा–
इस तीखी उन्माद ज्वालके, कण-कणमें जीवनका स्पंदन !
मैंने देखा, केवल अपने, रूखे केशोंसे अवगुंठित
वहाँ करोड़ों मधुबालाएँ, खडी विवसना और अकुण्ठित।
द्राक्षाके कुचले गुच्छे-सी, मर्माहत वे झुकी हुई थीं—
और रक्त उनके हृदयोंका, होता एक कुण्डमें संचित !
मैंने देखा–वहाँ करोड़ों भभकोंमें फिर उफन उफनकर,
भस्मीभूत अस्थियोंके अनगिन, स्तरकी छननीमें छनकर,
एक मनमोहक उन्मादक झिलमिल निर्झर रूप ग्रहण कर,
वही रक्त बढता आता था, मेरी मोहन मदिरा बनकर !
मैंने देखा, हुआ मयनमय, उस लालिम मदिराका कण-कण,
मेरे कानोंमें सहसा भर गया, एक प्रलयकर गर्जन–
प्यास कण्ठकी, प्यास हियाकी, ले लो झाँकी आज प्रियाकी
रूप सुरा छलकी आती है इन अनगिन नयनोंमें इस क्षण।
मैंने देखा, वहाँ करोड़ों, आँखोंमें उत्तप्त व्यथा है,
मैंने सुना, ' कहो, कैसी मधुबालाकी मधुमयी कथा है ?"
अट्टहासमें उस, विद्रूप भरा था कितना उग्र भयानक—
क्यों कडवी है ? क्या इलाज इसका, जब साकी ही विषपा ?"
तडप उठा मैं, चीख उठा, अब मेरा हा ! निस्तार कहाँ है ?
मेरे हित कलंककी कालिखका बस अब गुरु भार यहाँ है–
फट जा आज धरित्री ! मेरी दुस्सह लज्जा आज मिटा दे–
रक्तस्नात, यह मेरा साकी, मेरी दुखिया भारत माँ है !

बच्चनकी दृष्टिमें खैयाम

हमें कविवर बच्चनको हालावादकी भूमिकामें भी देखना है, हालाँकि वे अपनेको वहीं तक सीमित न रखते हुए बहुत आगे निकल आये हैं और उनकी काव्य धारा सदा सर्वदा स्वच्छंद धाराके रूपमें प्रवाहित रही है, उन्होंने अपनेको किसी वाद या किसी भी बाह्य

आकर्पणमे बाँधे रखकर कविता करना उचित नही माना। फिर भी यह देखना प्रसग-सगत ही होगा कि हम देखें कि हमारे कविने खैयामके दर्शनको किस रूपमे ग्रहण किया है। उन्होंने अपने प्रियतमको सबोधित करते हुए कहा है, "क्या तू स्वय एक मदिरा नही, जिसके लिए कितने दिनोसे मैं एक उमर खैयाम बन गया हूँ। इस कार्यने मुझे पूर्ण आनद दिया है।"[1] इन पक्तियोंसे बच्चनजीपर खैयामके पडे हुए प्रभावका परिचय मिलता है। अत हमे देख लेना चाहिए कि उन्होंने खैयामके दर्शन (फिलासफी) को किस प्रकार ग्रहण किया है। कविके ही शब्दोमे देखिए, "एडवर्ड फिट्जजेरल्डने उन्नीसवी सदीके मध्यमे अपने अँग्रेजी तरजुमेके अदर उमर खैयामका जो खाका खीचा है उसके बारेमे विना किसी सकोच या सदेहके मैं कह सकता हूँ कि वह किसी सुखवादी आनदी जीव अथवा किसी हिडोनिस्ट या एपीक्योरका नही है।

इन रुबाइयोका लिखनेवाला वह व्यक्ति है जिसने मनुष्यकी आकाक्षाओको ससारकी सीमाओंके अदर घुटते देखा है, जिसने मनुष्यकी प्रत्याशाओको ससारकी प्राप्तियोपर सिर धुनते देखा है, जिसने मनुष्यके सुकुमार स्वप्नोको ससारके कठोर सत्योसे टक्कर खाकर चूर-चूर होते देखा है। इन रुबाइयोंके अदर एक उद्विग्न और आर्त आत्माकी पुकार है, एक विपण्ण और विपन्न मनका रोदन है, एक दलित और भग्न हृदयका क्रदन है। सक्षेपमें कहना चाहे तो यह कहेंगे कि रुबाइयात मनुष्यकी जीवनके प्रति आसक्ति और जीवनकी मनुष्यके प्रति उपेक्षाका गीत है-- रुबाइयोका क्रम जैसा रखा गया है उससे वे अलग-अलग न रहकर एक लबे गीतके ही रूपमे हो गयी हैं। यह गीत जीवन मायाविनीके प्रति मानवका एकातिक प्रणय निवेदन है। पर कौन सुनता है ? वह अपना क्रोध विरोध प्रकट करता है, पर उसे हार ही माननी पडती है। मानवकी दुर्बलता, उसकी असमर्थता, उसकी परवशता, उसकी अज्ञानता और

---

१. खैयामकी मधुशाला--सबोधन पृष्ठ २

उसकी लघुताके साथ उसका दभ, उसका क्रोध विरोध और उसकी भ्राति उसे कितना दयनीय बना देती है। रुबाइयात सुखका नही, दुखका गीत है, सतोषका नही, असतोषका गान है। अंग्रेजी लेखक चेस्टरटनने लिखा है कि, " Omar's philosophy is not the philosophy of happy people but of unhappy people " अर्थात उमर खैयामकी फिलासफी सुखियोकी फिलासफी नही, दुखियोकी फिलासफी है। [१]

हमारे कविने उन दिनोकी फारसकी अवस्थाका वर्णन करते हुए *उसम मानसिक अस्थिरताकी प्रधानता बतायी है और दो प्रकारकी विचार धाराकी प्रधानता बतायी है। वे कहत हैं ' साधारण जनता इन विरोधी वृत्तियोको एक साथ लेकर चलती होगी और उसे इस विरोधका आभास भी नही होता होगा पर विचारकोको इस विरोधका ज्ञान और तज्जनित अशातिका अनुभव पल-पलपर होता होगा। उमर खैयाम इस दूसरी श्रणीके लोगोमेसे थे।* ' [२]

खैयामकी रचनाओकी विशद समीक्षाके उपरात हमारा कवि खैयामकी विचारधाराके विकासके विषयमे अपनी सभावना इस तरह व्यक्त करता है सक्षपमे उमरके यौवनकी वाणी वासना प्रधान, प्रौढताकी वाणी ज्ञान प्रधान और वृद्धावस्थाकी वाणी धर्म प्रधान है। दूसरे शब्दोंमे यौवनमे उनका शरीर प्रधान है प्रौढतामे उनकी वुद्धि और वृद्धावस्थाम उनका हृदय। [३]

हमारे कविने खैयामकी वाणीमे मानवताकी ही पुकार पायी है। उनके शब्दोंमे खैयामने जब अपने विचारोंको वाणी दी थी तब वह अपने व्यक्तित्वके ऊपर उठकर मानवताके स्तरपर पहुँच गये थे। [४] अगर हम कविकी इस उक्तिको ही प्रधानता दें तो हम उनकी ऊपरकी

१ खैयामकी मधुशाला-भूमिका पृष्ठ ६-७
२ वही-भूमिका पृष्ठ ५०
३ वही-पृष्ठ ५२
४ वही-पृष्ठ ५४

सभाव्य विचार धाराको सत्य नहीं मान सकते और वह सत्य है भी नही। आधुनिक अनुसधानोके आधारपर आरबेरी साहबने खैयामका जो चित्र अपनी नयी रचना 'Omar Khayyam–A new version based upon recent discoveries' मे प्रस्तुत किया है वह उक्त चित्रसे मेल नही खाता। खैयाम तो मूलत विचारक एव सूफी *व्यक्ति थे, जिन्होंने भले ही गोशानशीनी न अपनायी हो पर अपनी* वाणीमे अपने सिद्धातोको मुखर अवश्य किया है।

खैयामकी रुबाइयोपर बोलते हुए हमारा कवि कहता है "यह खैयाम और उसकी प्रेयसीका वार्तालाप नही है। यह है जन्मसे लेकर मरण तक मानवकी जीवन-चर्या। यह है सचेत होनेसे लेकर ससारसे विदा लेनेके समय तककी विचार धारा। यह है मानव-जीवनके कटु कठोर सत्योका दर्शन और उसकी प्रतिक्रिया। यह स्वतत्र मुक्तकोका सग्रह न होकर एक ऐसी आत्माकी पुकार है जिसे इस ससारके अतिरिक्त कुछ नही दिखायी देता, जो इस ससारसे सतुष्ट भी नही है और जो इससे विरक्त भी नही हो सकती। जीवनके प्रभातमे आँखें खोलकर वही इसी ससारकी ओर आकर्षित होती है। जितना ही वह इसके समीप जाती है उतनी ही उसकी निराशा बढती जाती है, वह दूसरे ससारका स्वप्न देखती है पर उसकी दुर्बलता उसे इसी ससारकी ओर फिर फिर झुकाती है और अतमे उसे इसे भी अनिच्छासे छोडकर महान् अधकारमे विलीन हो जाना पडता है। *खैयाम और उसकी प्रेयसीका वार्तालाप मनुष्य और उसकी तृष्णाका* सभाषण है। एक जगहसे आरभ होता है, दूसरी जगह समाप्त होता है।"[१]

इससे हम यह जान पाते हैं कि हमारे कविने खैयामको पलायनवादी कवि-दार्शनिकके रूपमे ग्रहण नही किया अपितु जीवनका चितेरा माना है। 'खैयामकी मधुशाला' के 'सबोधन' से यह स्पष्ट हो है कि हमारे कविपर खैयामका गहरा प्रभाव है और वह स्वयको खैयाम बना पाता है। यहाँ खैयामको जीवनके चितेरे कलाकारके रूपमे ग्रहण कर

१. खैयामकी मधुशाला-पृष्ठ ३३–३४

कविने जीवनके प्रति अपने रस-आस्थाका ही परिचय दिया है और इसी फिलासफीने तो उन्हें जीवनकी निराशामे भी ससारकी महानतासे दूर नही दिया है और उन्हें पलायनवादी होनेसे बचाया है भले ही कुछ समीक्षकोने ईर्ष्याभाव-वश अथवा उनकी कविताका पूरा परिचय न पानेके कारण उन्हें पलायनवादी कहा हो पर वे आरभसे लेकर अत तक जीवनके ही कवि रहे हैं।

हमारे कविने खैयामकी रुबाइयोकी कथापर प्रकाश डालते हुए अपनी भूमिकामे पृष्ठ ३० से ३३ तक विस्तारपूर्वक विचार प्रस्तुत किया है। विस्तार भयसे मैं उसमेंसे केवल एक-दो उदाहरण ही प्रस्तुत करूँगा। हमारे कविने आरभमे उसे इस तरह प्रस्तुत किया है, "रुबाइयात प्रभातसे लेकर सध्या तकका गीत है—जीवन प्रभातसे जीवन सध्या तकका, जनमसे मरण तकका।"[3] उसी वर्णनमे मानवकी पराधीनता एव विवशताका वर्णन करते हुए कवि कहता है, "हमे चुननेकी स्वतत्रता कहाँ है—सुरा आयी तो सुरा पी ली, गरल आया तो गरल पी लिया। मनुष्यके अधिकारमे है क्या, नियति हमे शतरजके मुहरेसे अधिक कब समझती है। हमे अपनी इच्छाके अनुसार करनेका अवसर कब मिलता है?"[4]

उक्त भावनाका विस्तृत वर्णन हमे कविवर बच्चनकी रचनामे यत्र-तत्र मिलता है। पर जैसा कि मैं ऊपर खैयामकी विवेचनामे कह आया हूँ कि खैयाम निराशावादी ही नही रहा है, उसने विशेष रूपसे अपने युगकी विचार धाराको प्रस्तुत किया है, उसमे विद्रोहकी भावना भी रही है। हमारे कविमे भी ये सारी बातें अनायास ही आ गयी हैं।

भारतमे खैयामकी विचार-धाराके प्रभावका वर्णन करते हुए हमारे कविने भारतकी स्थितिका विशद चित्र अकित किया है, पर जैसा कि उनके कुछ आलोचक उनकी रचनाओको स्वतत्रता-सग्रामकी पराजयकी निराशाका गीत बताते हैं, वह बात बिल्कुल नहीं है।

---

३ खैयामकी मधुशाला—भूमिका पृष्ठ ३०

४ वही—पृष्ठ ३२

कविने बताया है कि योरपके प्रभावमे चारो ओर बढते हुए यंत्र-युगके प्रभावने, वैज्ञानिकताने जो मनुष्यको निवृत्तिसे प्रवृत्तिकी ओर खीच लिया था और उसे भौतिकवादी बना लिया था, उसके प्रमाण-स्वरूप समाजकी विचार-धारा ही कुछ ऐसी बन गयी थी कि उस युगमे खैयामका गीत जनताका गीत बनने लगा था और यह स्थिति केवल भारतमें हुई सो बात नही इग्लैंडमे भी फिट्जजेरल्ड, थामसन, गिसिंग, हार्डी, हाउसमन आदि कवियोंमे भी इस भौतिक वादके प्रभावका परिचय मिलता है। आजके युगके बौद्धिकवादने हमे कितना ऊपर उठाया है इसके बारेमे कविके ही शब्द देखिए, "इस वातावरणमे मनुष्यकी बुद्धि इतनी जागरूक हो जाती है कि वह अपनेको स्वप्नोमे नही बिलमा सकता और उसकी आकाक्षाएँ इतनी तीव्र हो उठती हैं कि उसे वास्तविकताओंसे असतोष हो जाता है। इसमे मनुष्य विश्वासका मूल्य देकर तृष्णाको खरीदता है लेकिन जब उसे तृप्तिके अधरोंसे छूना चाहता है तो वह मृगतृष्णा बनकर उसे दूर-सुदूर ले जाती है और अतमे उसे थकित, तपित और पराजित देखकर उसपर अट्टहास करती है। इसमे अतरात्माकी अमूल्य निधियोपर ताला पड जाता है और मनुष्य जब उसे खोलनेका प्रयत्न करता है तो उसे ऐसा अनुभव होता है जैसे उसकी कुजी वह कही अज्ञात गिरा आया है। जिनको वह अपनी प्रार्थना सुना सकता था ऐसी दैवी शक्तियोमे श्रद्धा खोकर वह मानवी सवेदना पानेके लिए अपने चारो ओर देखता है पर किसीको अपनी ओर ध्यान देते न देख-कर वह लाचार होकर अपने ही ऊपर दया करनेको बाध्य होता है। और अतमे अपने दुख, दैन्य और निराशासे मुक्ति पानेमे अपनेको सर्वथा असमर्थ पाकर इन्हीको दुलराने लगता है, इन्हीको आदर्श बना लेता है। इस कथित सभ्य ससारव्यापी अधकार, अविश्वास, अनास्था, अतृप्ति, अशान्ति, अस्थिरता और अनिश्चयकी निश्चित आवाज है, 'रुबाइयात उमर खैयाम।' "[१]

सन् १९३०–३५ की भारतीय परिस्थितियोपर कविने अपने

---

१. खैयामकी मधुशाला–पृष्ठ ३८–३९

विचार इन शब्दोंमे व्यक्त किये हैं, "सन् १९३०–३५ के बीच भारत-वर्षकी परिस्थिति ही कुछ ऐसी थी जिसमें वह रुबाइयातका स्वागत करनेको तैयार था। सभव है, इन कारणोंमे एक यह भी हो कि हम स्वय वृहत्तर योरुपकी कृत्रिम छायाम आते जा रहे थे। जो विश्वासके साथ 'नैनं छिन्दति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः', सुख-दुखे समे कृत्वा' आदि अथवा 'कर्मण्यवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' कह सकते हैं, उनके लिए रुबाइयातमे शायद ही कुछ आकर्षण हो। इसके विपरीत जो लोग शिक्षा-सस्कार, सहानुभूति या अन्य प्रभावोंके कारण अपनेको योरोपियन अशातिके वातावरणमे लाएँगे उन्हें अवश्य रुबाइयातमे अपनी भावनाओंकी प्रतिच्छाया दिखायी देगी।"[१]

ø ø ø

---

१ खैयामकी मधुशाला–पृष्ठ ४१–४२

: २ : बच्चन– व्यक्तित्व एवं रचनाएँ

हमारे कुछ समीक्षकोंने जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' को भी हालावादके अंतर्गत रखा है जिनमे हमारे विद्वान डॉ. जगदीशनारायण त्रिपाठीजी भी हैं। वे उनके विषयमे लिखते हैं, "जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' ने उमर खैयामकी रुबाइयोंके अनुवादके अतिरिक्त इस विषयपर कतिपय मौलिक रचनाएँ भी लिखी हैं जिनपर भारतीय वेदान्तका रंग चढा हुआ है। उन्होने हालावादी विदेशी शैलीमे स्वदेशी दार्शनिक विचारोंके उतारनेका बडा ही सुन्दर सफल प्रयास किया है। यह संसार मिथ्या है। अतः कवि जो यहाँ नही पा सका है उसे ही वह मदिरालयमे प्राप्त कर अपनी प्यास बुझाना चाहता है। कवि प्राप्त क्या करना चाहता है, यह उसीके शब्दोमे देखिए :—

> है सदा यहाँ आवास नहीं, पूरी होनेकी आस नहीं।
> जलते उरकी जगके जलसे है बुझनेवाली प्यास नहीं॥
> हम उपनिषदोंमें व्यथित 'रसो वैस' को पाने आये है।
> हम प्यास बुझाने आये हैं॥
>
> जो पोथी पत्रे छोड रहे, मंदिर मस्जिदको तोड रहे।
> जो मदिरालयकी चौखटपर, अपने मत्थे है फोड रहे॥
> धर्मञ्चर, सत्यवद, उनको इतना दिखलाने आये हैं।
> हम प्यास बुझाने आये हैं। '[1]

पर मेरी अल्प रायमे यह रचना हालावादी रचना नही अपितु उसपर लिखी पैरोडी है। उसकी आलोचना है, हालावादी कवियोको (संभवत: विशेषकर कविवर बच्चनको) सद्मार्गपर चलानेवाले किसी उपदेशकको रचना है, हालावादी रचना कदापि नही। अतः मैं उनको हालावादी कवियोंमे रखना उचित नही मानता।

१. आधुनिक हिंदी कविताकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ–पृष्ठ ४४

इसी ही विचार-धारासे प्रेरित हमारे कुछ समीक्षकोंने कविवर बच्चनपर और हालावादपर जो दोषारोपण किया है, वह सर्वथा निर्मूल है और उन आलोचकोंकी कच्ची बुद्धिका परिचायक है। वे स्वयं उसी मतके हैं या केवल इस डरसे ही उन्होंने बच्चनकी निंदा की है कि कहीं बच्चनका समर्थन करनेके कारण वे भी हमारे कविके साथ बदनाम न हो जाएँ। उनके उन लगाये गये अभियोगोंका उत्तर देना मैं अनिवार्य मानता हूँ। उन समीक्षकोंने बहुधा बच्चनकी तीन पुस्तकों–मधुशाला, मधुबाला, मधुकलशके आधारपर ही उनकी विवेचना की है। अतः मैं सर्वप्रथम उनके विचारोंका खण्डन कविवर बच्चनकी उन तीन पुस्तकोंके आधारपर करके उनकी अन्य रचनाओंके आधारपर कविका हिंदी साहित्यमें स्थान निर्धारित करनेका प्रयत्न करूँगा।

श्री राजनाथ शर्मा लिखते हैं, "सूफी कवियोंकी उस अलौकिकताको भी हिंदीके हालावादी कवियोंके हाथों पड घोर लौकिकताका बाना धारण कर, इसी कारण उपहासास्पद बनना पडा था।" [१]

शायद हमारे विद्वान लेखक यह नहीं जानते कि खैयामको भी कठमुल्लाओं और धर्मके ठेकेदारों द्वारा कितना कुछ सहन करना पडा था, फिर बच्चनको भी अगर उपहासास्पद बनना पडा है तो रूढिवादियोंके हाथों, जनताने तो उनके काव्यको हाथोंपर ले लिया है, मनमें बसा रखा है, यही तो कारण है कि आज २५ वर्ष व्यतीत होनेपर भी उनकी रचनाओंके नये-नये संस्करण निकलते दिखायी देते हैं।

श्री राजनाथ शर्मा एवं प्रो विश्वम्भरनाथ उपाध्यायके शब्दोंमें, "हालावाद झंझावातकी तरह आया और निकल गया।" [२] पर यह बात भी ठीक नहीं। जैसा कि मैंने ऊपर बताया है कि उन दिनों कुछ हवा ही ऐसी चल पडी थी कि कविवर मैथिलीशरण

---

१. साहित्यिक निबंध–पृष्ठ ३७७

२. वही–पृष्ठ ३७९–८० एवं "हिंदी साहित्यके प्रमुख वाद और उनके प्रवर्तक"–पृष्ठ २७९

गुप्त एव पत जैसे कवि भी इस धारामे प्रवाहित होनेसे बच न सके और ये रचनाएँ निरतर १९२७ से पत्र-पत्रिकाओमे स्थान पाती रही ठीक आजके प्रयोगवादी रचनाओकी भाँति, वे रचनाएँ भले ही पुस्तकाकार रूपमे १९३१ से आयी हैं। हिंदी ही नही, सस्कृत, बगला, उर्दू, सिंधी भाषाओमे भी इन रचनाओके अनुवाद एव इस शैलीकी रचनाएँ उपलब्ध हैं। अत उस धाराका प्रवेश साहित्यकी अन्य धाराओकी भाँति धीरे-धीरे होता गया न कि श्री राजनाथ शर्माजी-के अनुसार यह कविवर बच्चनका प्रगतिवादका विरोध मात्र था। मैं ऊपर कह आया हूँ कि हमारे कविने अपनेको किसी वादसे आवद्ध नही रखा और न ही किसी वादका विरोध मात्र करनेके लिए नया वाद चलाया।

श्री राजनाथ शर्माने अपनी पुस्तकके ३८० वे पृष्ठपर कविकी मधुशालाके 'सबोधन' की इन पक्तियोंका आश्रय लेकर कितना गलत अर्थ लगाया है! उनके शब्दोंमे, "कविने हालाको अपने काव्यका विषय क्यो चुना? इसके लिए मधुशालाकी भूमिका रूपमे 'सबोधन' के नामसे लिखा हुआ कविका वक्तव्य दृष्टव्य है। उसमे एक स्थानपर[1] कविने लिखा है, "आह, जीवनकी मदिरा जो हमे विवश होकर पीनी पडी है कितनी कडवी है! कितनी! यह मदिरा उस मदिराके नशेको उतार देगी, जीवनकी दुखदायिनी चेतनाको विस्मृति-के गर्तके गिराएगी तथा प्रवल दैव, दुर्दम काल, निर्मम कर्म, और निर्दय नियतिके क्रूर कठोर कुटिल आघातोसे रक्षा करेगी। क्षीण, क्षुद्र, क्षणभगुर, दुर्वल मानवके पास जग जीवनकी समस्त आधि-व्याधियोंकी यही एक औषधि है। ले, इसे पान कर और मदके उन्मादमे अपनेको, अपने दुखको, अपने दुखद समयको और समयके कठिन चक्रको भूल जाना।"[2]

मैं तो यही कहूँगा कि हमारे विद्वान पाठकने सपूर्ण भूमिका नही पढी। उसे धैर्यपूवक शात हृदयसे सपूर्ण भूमिका पढकर उसमें

---

१. मधुशाला— चौदहवाँ सस्करण— पृ १३-१४
२. साहित्यिक निबध— पृ. ३८०-३८१

झलकती आध्यात्मिकताको परखनेका प्रयत्न करना चाहिए था। अगर वे इतना करते तो शायद उपरोक्त पंक्तियोंका वे इस भाँति गलत अर्थ न लगाते। संपूर्ण भूमिका भक्ति भावसे भरी हुई है। माना कि हमारे कविका अहं अत्यंत सजग रहा है और यह कोई दोष नहीं, यह तो काव्यको साहित्यको सशक्त बनानेके लिए अनिवार्य भी है, फिर भी उनके अहं और समर्पणकी भावनामें द्वंद्व है ही और घोरसे घोर अहंवादी भी समर्पणमें आनंदानुभूति करता है। हमारे कविने कहा भी है, "इस स्वार्थी मानवकी जिसमेंसे मैं भी एक हूँ चरम अभिलाषा आत्मानंद नहीं, आत्मसमर्पण है।"[1] ये पंक्तियाँ तो भक्त हृदयकी पुकार हैं जो आत्मसमर्पणमें अपने अहंको विलीन करनेमें ही सब-कुछ मानता है। कविकी हाला और प्याला एवं साकीबालाका परिचय ये पंक्तियाँ देंगी, "तुम पुरुष बनाकर मैं मायारुपिनी चंचला साकी बाला बनूँ।"[2] और "अपने इस मृत मृत्तिका पात्रको तेरे ज्योतिर्मय अधरों तक ले आनेका दुस्साहस।"[3] इन पंक्तियोंमें सूफी सम्प्रदायसे एक अंतर अवश्य मिलेगा कि सूफी सम्प्रदायमें ईश्वरको प्रेयसी एवं साधकको प्रियतम माना गया है पर हमारे कविने भारतीय परंपराको ही अपनाया है। उपरोक्त पंक्तियाँ भी तो कविने ईश्वरको संबोधन करके लिखी हैं जिनका अर्थ हमारे विद्वान लेखकने मनचाहा ले लिया है। मैं उनके लिए यहाँपर प्रोफेसर काॅवेल द्वारा प्रकाशित लेखसे इन पंक्तियोंको उद्धृत करना चाहूँगा जिससे खैयामकी विचार धाराका भी परिचय हमें मिलेगा जो उपरोक्त पंक्तियोंसे भिन्न नहीं है।

> If coming had been in my power
> I would not have come,
> If going had been in my power,
> I would not go,

---

१ मधुशाला— संबोधन पृ १३
२ वही पृ १४
३ वही पृ १५

Oh ! best of all lots, if in this world of clay,
I had come not, nor gone; nor been at all ! [१]

(अगर आना मेरे हाथो होता, तो मैं न आता, अगर जाना मेरे हाथो होता तो मैं न जाता । इस नश्वर दुनियामे अगर सबसे बढकर कोई बात होती तो मैं न आता ही, न जाता ही, न होता ही ।)

उपरोक्त पक्तियोका अर्थ हमे यही लेना होगा कि हमारा कवि निराशामय जीवनमे भी व्यक्तिमे जीवनका उन्माद भरना चाहता है, कार्यको लगन भरना चाहता है जिसकी मादकतामे वह जीवनके दुखोको भूल जाता । दुखोकी स्मृति मनुष्यमे प्राण नही फूकती । अपने दुखोपर रोते बैठना कहाँकी महानता है ? हमे तो उन्हे विस्मृतिमे डुबोकर अपनी मस्तीमे जीवन जीना होगा । यहाँ मस्ती जीवन-मदिराकी है, बाहरसे खरीदी हुई सुराकी नही ।

श्री. राजनाथ शर्मा लिखते हैं, "बच्चनने मदिराका आश्रय क्यो ग्रहण किया ?" इसका एक कारण हम ऊपर उन्हीके शब्दोमे बता आये हैं । इसका दूसरा कारण बताते हुए उन्होंने लिखा है कि–

वासना जब तीव्रतम थी, बन गया था सयमी मैं
हो रही मेरी क्षुधा ही सर्वदा आहार मेरा । [२]

श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय भी उपरोक्त पक्तियोका उदाहरण देते लिखते हैं, "सौंदर्यकी प्रतिमा नारीका अशरीरी सौंदर्य ही कवितावा विषय रहा, प्रणयोद्गारोने दार्शनिक परिधान पहन लिया था । 'बच्चन' का 'हालावाद' इन्हीं प्रणयमूलक भावनाओका उद्गार मात्र था जो एक विप्लवके रूपमे फूट पडा । तीव्रतम वासना सामाजिकताकी शिलाके नीचे तडप उठी, सयम सहन न हो सका ।"[३]

---

१. The Romance of the Rubaiyat–A. J. Arberry Introduction page-90
२ साहित्यिक निबध-पृष्ठ ३८१
३ हिंदी साहित्यके प्रमुख वाद और उनके प्रवर्तक–पृष्ठ २७९

उपरोक्त पक्तियाँ 'मधुकलश' मे सकलित 'कविकी वासना' के ७ वे गीत मे पृष्ठ १९ पर आयी हैं। मैं अपने विद्व समीक्षकोंसे प्रार्थना करूँगा कि वे 'कविकी वासना' के सपूर्ण गीत पढ ले। क्या उन्हे जनताके आरोपोंका उत्तर उनम नही मिलता? कविने अपनी समाजके दोषारोपण पर प्रतिक्रियाओके विषयमे 'मधुबाला' की भूमिकामे पृष्ठ ८ पर लिखा है "इनके विरुद्ध मेरी प्रतिक्रियाएँ जहाँ-तहाँ मेरी रचनाओंमे मौजूद हैं।"

हमारे कविने कविकी वासनाम विस्तारपूर्वक अपनी वासनाका वर्णन किया है जो किसी भी आदर्श कविके लक्षण ही सिद्ध करता है। कविको कल्पनाका सहारा लेना ही पडता है। कविताके लिए प्रतिभा एव व्युत्पति अनिवार्य अग माने जाते हैं। व्युत्पतिके अतगत अध्ययन, लोकानुभूति एव प्रकृति दर्शन आ जाते हैं। हमारे कविने प्रतिभा एव व्युत्पतिके साथ प्रणयसे प्राप्त प्ररणाको भी काव्य रचनाका प्रेरक स्रोत अवश्य माना है और यह उनकी मौलिक स्थापना भी है। 'हलाहल' मे 'कृतिपरिचय' म १५ वे पृष्ठ पर उन्होंने लिखा है, "कभी-कभी कविता लिखनेके लिए हृदयमे आवेग उठता है और वह रोका नही जा सकता है।" किन्तु उन्होने जीवन अनुभूतिशून्य रचनाको कविता मानना भी तो स्वीकार नही किया —

> जीवन-अनुभव स्वाद न कटु यदि मेरी जिव्हापर आता
> कौन मधुर मादकता मेरे गीतोंके अदर पाता। [1]

हम जानते हैं कि साहित्यमे अभिव्यक्त प्रत्येक बातका अनुभव लेखकका निजी जीवनगत अनुभव ही नहीं, काल्पनिक अनुभव भी होता है और यह काल्पनिक अनुभव प्रत्यक्ष अनुभवसे कम रंगीन नहीं होता। हमारा कवि कल्पनाको, अपने काव्यका, अपनी आरभिक रचनाओंमे, प्रधान गुण मानता रहा है और निस्सदेह कविने बहुत ऊची उडानें भरी हैं पर उन्होंने अपन पैरोको–दृष्टिको पृथ्वीपर स्थित बताया है —

---

[1] आरभिक रचनाएँ भाग २–पृष्ठ ५४

सत्य आवश्यक अगर है,
स्वप्नकी दरकार भी है,
स्वप्न-जिनको व्योमसे मैं
बीच मनके खींच लाता,
है गडी यद्यपि धराकी
ओर आज निगाह मेरी। [1]

किंतु उपरोक्त पक्तियोंका उदाहरण देकर हमारे समीक्षक-गणोंने जो उसमे कविकी अभुक्त वासनाकी अभिव्यक्ति बतायी है, वह उचित नही है। उसमे तो कविने अपने मनपर विवेकके अंकुश रखनेका पूर्ण परिचय दिया है और अपनी क्षुधाको ही अपना आहार बताते हुए अपनी चिर पिपासाको ही सुदर बताया है। अगर यह चिर पिपासा पाप है, तो हमारी महादेवी वर्मा, स्वर्गीय बाबू जयशंकर प्रसाद, पंत, नवीन आदि कोई भी कवि इस आरोपसे मुक्त नही हो सकता।

हमारे कविने काव्यमें कल्पनाके समावेशको अध्येताके चितपर व्यापक प्रभावको अंकित करनेमें सहायक माना है। हमारे कविने कभी मिलनको श्रेयस्कर नहीं माना; वह तो चिर विरहको, अपने प्रियतमके अनुसधानमें ही जीवनकी सार्थकता देखता रहा है:—

आदर्शोको लक्ष्य बनाता
जो न, सत्य ही कब वह पाता ?
नहीं मिलनमें किंतु खोजमें है जीवनका सार। [2]

इसी भावनाको कविने मधुशालामे इन शब्दोंमे रखा है:—

प्यार नहीं पा जानेमें है
पानेके अरमानोंमें!
पा जाता तब, हाय, न इतनी
प्यारी लगती मधुशाला। [3]

१. मधुकलश–पृष्ठ ६२
२. प्रारंभिक रचनाएँ भाग–२ 'कवि' पृष्ठ १०६.
३. मधुशाला–पृष्ठ– ७४.

फिर भी हमारे समालोचकोंको उसमें वासनाकी गंध आती है तो उसका क्या किया जा सकता है ?

दोनों ही समीक्षकोंने कवितामें प्रस्तुत कविकी विचार धाराको ग्रहण किया होता तो यह मिथ्यारोपण उन्हें न करना पड़ता। हमारे कविने हाला, साकी, मधुशाला आदिका परिचय निम्न पंक्तियोंमें प्रस्तुत किया है। क्या यह अस्पष्ट है —

भावुकता अंगूर लतासे
खींच कल्पनाकी हाला
कवि साकी बनकर आया है
भरकर कविताका प्याला
कभी न कणभर खाली होगा
लाख पिएँ दो लाख पिएँ !
पाठक गण हैं पीनेवाले
पुस्तक मेरी मधुशाला।
मधुर भावनाओंकी सुमधुर
नित्य बनाता हूं हाला,
भरता हूँ इस मधुसे अपने
अंतरका प्यासा प्याला।[१]

और अपनी हालाकी काल्पनिकतापर और अधिक प्रकाश डालते हुए कविने कहा है —

यह स्वप्न विनिर्मित मधुशाला,
यह स्वप्न रचित मधुका प्याला
स्वप्निल तृष्णा, स्वप्निल हाला
स्वप्नोंकी दुनियामें भूला,
फिरता मानव भोला भाला।[२]

उनकी कवितामें आध्यात्मिक तत्वकी प्रधानता है और उसको हम कविके संपूर्ण काव्यमें यत्र-तत्र पाते हैं —

---

१ मधुशाला-पृष्ठ २७
२ मधुबाला-पृष्ठ ३१

मैं मदिरालयके अंदर हूँ,
मेरे हाथोंमें प्याला,
प्यालेमें मदिरालय बिंबित
करनेवाली है हाला;
इस उधेड़-बुनमें ही मेरा
सारा जीवन बीत गया
मैं मधुशालाके अंदर या
मेरे अंदर मधुशाला ।[१]

क्या उपरोक्त पंक्तियाँ जीव और ब्रह्मके संबंध, मायाके आवरणमें बनी उलझनका परिचय प्रस्तुत करनेमे कुछ त्रुटियुक्त हैं ? कविने तो मधुशालाको प्रेमशाला माना है जहांपर प्रेमकी दीक्षा मिलती है। व्यक्ति अपनी प्रेममयी भावनासे ही ऊँचा उठ सकता है:—

मधुशाला वह नहीं जहाँपर
मदिरा बेची जाती है,
भेंट जहाँ मस्तीकी मिलती
मेरी तो वह मधुशाला ।[२]

कविवर रसखानने प्रेमकी व्याख्या करते हुए बताया है कि प्रेमको जाननेवाला–प्रेमी–मृत्युका दुख नही मनाता :—

प्रेम प्रेम सब कोऊ कहत, मरम न जानत कोय ।
जो जन जाने मरम, तो, मरे जगत क्यों रोय ॥

पर हम देखते हैं कि मृत्युका भय विश्वव्यापी बनकर पंडितो-साधुओंको भी दुखी बनाता है। हमारा कवि तो मृत्युका भय नहीं मानता यही तो प्रेमालय–मदिरालयकी दीक्षा है:—

ज्ञात हुआ यम आनेको है
ले अपनी काली हाला,

१. मधुशाला–पृष्ठ ८४
२. वही–पृष्ठ ८५

पंडित अपनी पोथी भूला,
साधू भूल गया माला,
और पुजारी भूला पूजा
ज्ञान सभी ज्ञानी भूला,
किंतु न भूला मरनेपर भी
पीनेवाला मधुशाला।[१]

कविकी निम्न पंक्तियोंपर भी आक्षेप उठाया जाता रहा है —

मेरे अधरोंपर हो अंतिम
वस्तु न तुलसीदल, प्याला,
मेरी जिव्हापर हो अंतिम
वस्तु न गंगा जल, हाला।[२]

मैं इन पंक्तियोंका स्पष्टीकरण करनेसे पूर्व पाठकोंका ध्यान फिट्ज़जेरल्डके संदेहकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जिस संदेहके कारण ही वे खैयामको सूफी माननेमें हिचकिचाते थे। पंक्तियाँ देखिए —

Were the wine spiritual for instance, how wash the body with it when dead? Why make cups of the dead clay to be filled with—" La Divinite "— by some succeeding mystic [३]

वस्तुस्थिति यह है कि सूफी मत भी भारतीय दर्शनसे प्रभावित रहा है, अतः उसमें हमारी भारतीय पुनर्जन्मकी भावनाका समावेश हो गया है। इस मिट्टीसे पुनः शरीर निर्मितिकी कल्पना एवं उसमें पुनः जीवन-मदिराके भरे जानेका भावरूपकके रूपमें खैयाम द्वारा प्रकट हुआ है। खैयाम बाह्य आचार विचारोंके समर्थक नहीं थे, उन्होंने तो उनका सामर्थ्यपूर्ण खंडन किया है। बच्चनने भी बाह्य आचार-

१. मधुशाला—पृष्ठ ६८
२ वही—पृष्ठ ६६
३ Rubaiyat of Omar Khayyam—E Fitzgerald—Calcutta publication. page 2—Introduction.

विचारोंका खडन अपनी रचनामें यत्र-तत्र प्रस्तुत किया है। ये आचार-विचार मात्र दिखावा हैं, ढकोसला हैं। आदमी जीवनभर पाप करके अगर अतमे गगाजलके द्वारा स्वर्ग पहुँच जाए तो ऐसा धर्म समाजमे अनाचार ही फैलाएगा। कबीरदासजीने जो काशी छोडकर मगहरमे अपने प्राण त्यागनेकी भावना एव काशीके स्वर्गदायक रूपपर व्यंग्य करते हुए कहा था कि,

जो कबिरा कासी मरै, तो रामै कौन निहोर।

इस एक उक्तिमे जो सत्यकी झलक है, वही सत्य रँगाम और बच्चनकी पक्तियोंमे है कि वे किसी भी तरह इस धर्मका आधार लेकर अपने अपराधोसे मुक्त होना नहीं चाहते। अगर उन्होंने कोई अपराध किया है तो उन्हें दड मिलना चाहिए ताकि समाजमे नीति नष्ट न हो। हमारे समीक्षक बच्चनको नीतिसे गिरा हुआ, औरोको गिरानेवाला बनाते रहे हैं पर वे बाह्य आवरणमे अपनी वास्तविकता-को छिपाये फिरनेवाले ढोंगी लोगोंके ही समर्थक हैं और वास्तवमे अनाचार इसीसे ही फैलता है पर बदनाम होते हैं स्पष्टवादी, जैसा कि हमारे कविने भी कहा है—

मै छिपाना जानता तो
जग मुझे साधू समझता,
शत्रु मेरा बन गया है
छल रहित व्यवहार मेरा।[1]

इन पक्तियोंमे कविने केवल अपनी बात न कहकर एक व्यापक एव कठोर सत्यपर प्रकाश डाला है कि आज दुनिया स्पष्टवादियोंकी नही, छल-कपट करनेवालोकी है।

प्रो विश्वभरनाथ उपाध्यायजीने इन शब्दोंमे कविके प्रति कितना बौद्धिकताका परिचय दिया है, वह दृष्टव्य है, "बस, हम दीवानोकी टोली चल देनेको तैयार हुई।" और इन दीवानोको कुछ समझना बाकी न रहा—

कल्पना, सुरा औ' साकी है—पीनेवाला एकाकी है
यह भेद हमें जब ज्ञात हुआ, क्या और समझना बाकी है?

१. मधुकलश-पृष्ठ २०

हालावादी 'करमें एक सुराही बाकी' लेकर झूमता चला।[1]

उपरोक्त पंक्तियाँ 'मधुशाला' के पृष्ठ ४३ से उद्धृत की गयी हैं जिनके आगे कवि यह भी कहता है—

जो गाँठ न अब तक सुलझी थी
उसको सुलझाने हम आये।

निस्सदेह जीवन एक रहस्य है जिसपर आदिकालसे लेकर आज तक न जाने कितने विचारकों एवं चितकोंने अपने मत अभिव्यक्त किये हैं पर अब भी वह गाँठ कहाँ खुली है? जब व्यक्ति यह जान लेता है तब उसे मालूम होता है कि जिसको मैं खोजता था वह और कोई नही मैं था, जिसकी मुझे प्यास थी वह और कोई नही मैं था। तब जाननेके लिए शेष रहता भी क्या है? क्या अहं ब्रह्मास्मि या अनलहककी भावनाकी अभिव्यक्तिके उपरात भी कहनेको शेष रह जाता है?

हमारे दोनो ही विद्वान आलोचकोंने कविपर देशद्रोही होनेका बडा भारी अभियोग भी लगाया है। उनका कथन है कि जब सारे देशमे हमारी आजादीकी लडाई लडी जा रही थी, जिसमे भले ही हमने क्षणिक हार पा ली हो, कविने सारी जनतामे निराशावाद फैलाया है और उसे अपना दुख भूलनेके लिए सुराका अवलब लेनेका मार्ग बताया है।[2] डॉ. त्रिपाठीका भी मत वैसा ही है।

मैं अपने आलोचकोका ध्यान कविकी 'मधुकलश' मे सकलित 'माँझी' एव 'लहरोका निमत्रण' कविताओकी ओर आकर्षित करूँगा जिन्हे कोई भी समीक्षक पलायनवादी कविताएँ मान ही नही सकता। उनमे तो जीवनकी विषम परिस्थितियोंसे टकरानेका अमर संदेश है और ये रचनाएँ जब तक मानवका इतिहास है उन्हें विपत्तियोंमें

---

१. हिंदी साहित्यके प्रमुख वाद और उनके प्रवर्तक-पृ. २८४

२. साहित्यिक निबंध–पृष्ठ २७१ एव हिंदी साहित्यके प्रमुख वाद और उनके प्रवर्तक–पृष्ठ २७७–२७८, तथा आधुनिक हिंदी कविताकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ–डॉ त्रिपाठी–पृष्ठ ५१-५२

वही अमर संदेश देती रहेंगी। एक-एक पंक्ति ही दोनों कविताओंकी उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ —

मय चुके हैं कर न जाने बार कितनी विश्वसागर
धूलिमय नभ, क्या इसीसे
बाँध दूं मैं नाव तटपर ?[१]

और

देखते क्यों नेत्र कविके
भूमिपर जड़ तुल्य जीवन
तीर पर कैसे रुकूं मैं,
आज लहरोंमें निमंत्रण।[२]

कविने निम्न पंक्तियोंमें भले ही नियतिवादको स्वीकार किया हो पर उन्होंने हारकर बैठनेका संदेश कभी नहीं दिया :–

हम जिस क्षणमें जो करते हैं
हम बाध्य वही हैं करनेको।[३]

'मधुबाला' के प्रलापमें कविने विश्वकी समस्त वस्तुओंको अपने प्रियतमको रिझानेमें प्रयत्नशील बताया है। प्रतिदिन उषा, दिनकर, चंद्रमा, पुष्प, भ्रमर—हर वस्तु नित्य नूतन शृंगार किये अपने प्रियतमको प्रसन्न करनेमें असमर्थ रहकर प्रलाप कर उठती है पर वह चीत्कार या प्रलापके पश्चात् खामोश होकर नहीं बैठती, दूसरे दिन और अधिक उत्साहसे, अधिक साज-सज्जासे वह अपने प्रियतमको रिझानेका प्रयत्न करती है। अतः हमारा कवि निराशामें भी आशाकी किरण दिखानेका पक्षपाती रहा है।

जीवनमें दोनों आते हैं
मिट्टीके पल, सोनेके क्षण,
जीवनसे दोनों जाते हैं,
पानेके पल, खोनेके क्षण।[४]

---

१ मधुकलश–पृष्ठ ७१
२. वही–पृष्ठ ७५
३. वही–पृष्ठ ११
४. वही–पृष्ठ ११

हमारे कविको डॉ जगदीश नारायण त्रिपाठीजीने एव प्रो विश्वम्भरनाथ उपाध्यायने निम्नलिखित पक्तियोंके लिए आवारा कहा है।[१]

म दुनियाका हू एक नया दीवाना
मैं दीवानोंका वेश लिये फिरता हूँ
म मादकता नि शेष लिये फिरता हूँ
जिसको सुनकर जग झूम झूमके लहराए
म मस्तीका संदेश लिये फिरता हूँ।[२]

दुनियामे सत्य कहनेवाले दीवाने होते ही हैं। कवि पागल और प्रमी एक हा कोटिम आते हैं। कविवर महात्मा कबीरने भी कहा था –

हमन ह इश्क मस्ताना हमनको होशयारी क्या ?

और भी –

हरि रस पीया जानिये कबहूँ न जाय खुमार।
म मता घूमत फिरूँ नाहीं तनकी कछु सार॥

और फिर हमारे कविपर तो अभियोग लगाये ही जा रहे थे पर कविने उनकी कभी कोई चिंता नही की। उन्होंने कुछ आक्षपोंके उत्तर अवश्य अपने काव्यमे दिये हैं पर इतना भी आलोचकोको बता दिया है कि अगर तुम लोग हम मतवाला-दीवाना कहते हो फिर हमारे ऊपर नियम किसलिए लगाते हो ? क्या कभी किसी दीवानेने नियमका पालन किया है ? अगर वह नियमोका पालन करता तो उसे पागल कहा ही क्यो जाता ? मानो आलोचकाकी जबानको कविने हमेशाके लिए ताला लगानेका प्रयत्न किया हो पर आलोचक हैं कि ताला तोड-तोडकर अभी भी बाहर आ ही जाते हैं उनपर कविकी इन पक्तियोका कोई असर नही होता –

मतवालोंने कब काम किये
जगमें रहकर जगके मनके ?

१ आधुनिक हिंदी कविताकी प्रमुख प्रवत्तियाँ–पृष्ठ ५२ एव हिंदी साहित्यके प्रमुख वाद और उनके प्रवतक–पृष्ठ २८४
२ मधुबाला पृष्ठ १२५

यह मादकता ही क्या जिसमें
बाकी रह जाए जगका भय।[1]

संसारमें आज उनकी पूछ होती है जो संसारके गुण गाते हैं। जो उसपर कटाक्षेप करते हैं, जो उसके दोषोंके परिष्कारके लिए व्यंग बाण लिए बैठे रहते हैं, संसार उनकी पर्वाह नहीं करता, पर वे भी कब संसारकी पर्वा करते हैं? वे तो स्नेहसुरासे छके रहते हैं। हमारे कविने अपने मदिरापानके विषयमें लिखते हुए जगकी अपने प्रति उदासीनताके प्रति अपनी उदासीनता व्यक्त की है –

मैं स्नेह-सुराका पान किया करता हूँ,
मैं कभी न जगका ध्यान किया करता हूँ,
जग पूछ रहा उनको, जो जगकी गाते,
मैं अपने मनका गान किया करता हूँ।[2]

सुराके परिचयके साथ उपरान्त पंक्तियाँ कविकी रचनाको स्वात सुराय रचनाके अतर्गत ला रखती हैं। सुराके ही विषयमें कविने 'मधुबाला' में लिखा है —

तुमने समझा मधुपान किया?
मैंने निज रक्त प्रदान किया!
उर क्रदन करता था मेरा
पर मुखसे मैंने गान किया!
मैंने पीडाको रूप दिया
जग समझा मैंने कविता की![3]

उपरोक्त पंक्तियाँ बताती हैं कि मेरी कविताको तुम मदिरापानके रूपमें ग्रहण करते हो पर वास्तवमें वह मदिरा नहीं, मेरे हृदयका रक्त है जो आँसू बनकर बह पड़ा है। मेरे हृदयमें तो पीडा रही है पर मैं मुखसे गान करता रहा हूँ। इन उद्धरणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि कविकी हाला वह नहीं जिसे कोई पीकर उन्मत होता है पर यह हाला तो आदमीको पीती रहती है। कविने मधुबालाकी भूमिकामें

---

१ मधुबाला-पृष्ठ ८६
२ वही-पृष्ठ १२२
३ वही-पृष्ठ ५८।

लिखा है, "संसार बार-बार उसके मार्गमें आकर उससे पूछता है, 'क्यों जी, तुम पीते भी हो मदिरा?' उसे वह क्या उत्तर दे। समझ सकनेकी शक्ति हो तो समझें, उसके पास वह मदिरा है, जो उसे ही पीती है।" [१]

प्रो. विश्वम्भरनाथ उपाध्यायजीने 'मधुबाला' के प्रलापकी निम्न पंक्तियोंको कितने विकृत रूपमें ग्रहण किया है, देखिए, उनके ही शब्दोंमें, "ऋषिने ईश्वरका आविष्कार किया था और 'बच्चन' ने हालाका। धन्य हैं, जिसे देखकर यह कवि सौंदर्यको हालाका भान कर पाया, वह मधुबाला इस प्रकार आयी।

"मनुष्यने अपने जीवनको अपूर्ण समझा; पर उसने उस अपूर्णताके सामने सिर न झुकाया, मनमें यौवन था, रोम-रोममें यौवन था..... उसने मधु वितरण करनेवाली मधुबालाके पग-पायलोंकी रुन-झुन, रुन-झुन सुनी......उसने अपने चारों ओर कल्पनाका संसार बना डाला......वह जानता था कि उसके स्वप्न-संसारकी वास्तविकताके साथ सहयोग न कर सकेंगे इसलिए पानेके अरमानको ही उसने प्राप्ति सुख समझ रखा था, कहता था, "पा जाता तब, हाय न इतनी प्यारी लगती मधुशाला"......[२]

हम जानते हैं कि साहित्य एवं कलाके मूलमें यही भाव है कि, "कला अपूर्ण जीवनको पूर्ण बनानेकी साध है।" साहित्य सर्वश्रेष्ठ कला माना जाता है। निस्संदेह यह विश्व अपने अपूर्ण रूपमें पूर्ण एवं पूर्ण रूपमें अपूर्ण है। संसारकी कोई भी वस्तु सर्वांग सुंदर नहीं होती। हरेक वस्तुमें गुणोंके साथ अवगुण भी रहते हैं पर कलाकार अपनी कलाके बलपर, अपनी कल्पना-शक्तिके बलपर उसे पूर्ण बनानेमें नित्य प्रयत्नशील रहा है और रहेगा। वह अगर अपनी कलाको पूर्ण मान ले तो उसका विकास अवरुद्ध हो जाएगा। उसके मनमें अपनी त्रुटियाँ चुभती रहती हैं और वह नित्य नये-नये प्रयत्न करता पूर्णताकी ओर अग्रसर होता है। क्या ये प्रयत्न व्यर्थ हैं? हमारे

१. मधुबाला-प्रलाप-पृष्ठ २०-२१
२. हिंदी साहित्यके प्रमुख वाद और उनके प्रवर्तक-पृष्ठ २८३

विद्वान समीक्षकने उपरोक्त उदाहरणमे कौनसा असत्य देखा ? मानव-जीवनकी वास्तविकता उसमें झलकती है और मनुष्यकी तो यही विशेषता है कि, "जिसे हम पा नही सकते उसीकी चाह होती है।"

मनुष्य, मनुष्य है न देवता, न दानव। देवता अमर हैं और अमर होनेके नाते अपरिवर्तनीय, अत अमृत पीनेमे कौनसी महानता है ? पर कवि तो जीवनमे हारकर विषपानको भी हेय मानता है वह तो इन दोनोकी मिश्रित अनुभूतिवाले जीवनका पक्षपाती है। हमारी महादेवी वर्माजीने भी कहा है —

अमरता है जीवनका ह्रास
मृत्यु जीवनका चरम विकास।

हमारे कविकी निम्न पक्तियोमे मनुष्य जीवनकी अविकल पिपासाको ही श्रेयस्कर बताया गया है —

बस, एक बार पूछा जाता,
यदि अमृतसे पडता पाला,
यदि पात्र हलाहलका बनता
बस, एक बार जाता ढाला
चिर जीवन औ' चिर मृत्यु जहाँ
लघु जीवनकी चिर प्यास कहाँ
जो फिर फिर होटों तक जाता
वह तो बस मदिराका प्याला,
मेरा घर है अरमानोंसे
परिपूर्ण जगका मदिरालय।[1]

मानव जीवनका प्याससे अटूट संबंध है। 'जब तक साँस तब तक आस' की उक्ति प्रचलित है। पर कविकी प्यास जो बदनाम रही है क्या वास्तवमें वह व्यक्तिगत सुखकी कामनासे युक्त है ? कविकी उक्तियाँ,

---

१ मधुबाला—पृष्ठ ६२-६३

मेरी तृष्णा तो मूर्तिमती
परिपूर्ण विश्वकी आशंका,
मानव अशांति, मानव स्वप्नों–
मे गायन हो तो गाता हू,
गाऊँगा जब तक एक नहीं
होकर मिलते सघर्ष प्रणय । [१]

इससे अधिक मानव-समाजकी मगल कामना वह भी आलोचकों द्वारा निंद्य हालावादी युगकी तीन रचनाओंमेसे एकमे, *क्या पायी जा सकती है ?*

हमारे कविने मधुबाला की भूमिका 'प्रलाप' के अतमे लिखा है *कि जग तो कविकी कविताको गान रूपमे ग्रहण कर आनद विभोर* हो उठता है पर उसके मनमें जो पीडा रहती है उसे कोई पहचाननेका प्रयत्न नही करता । उनके इन शब्दोको भी कितने विकृत रूपमे प्रो विश्वभरनाथ उपाध्यायने ग्रहण किया है [१] वे तो वाल्मीकि सूर, तुल्सी शक्स्पीयर दाँते मिल्टन रूमी फिरदौसी गोर्कीको समझनेका दावा करते हैं पर नि सदेह उन्होने बाह्य अथमे, जिस अथमे इस पक्तिको ग्रहण किया है कविको नही ही समझा ।

कवितामें जीवन-सघर्ष

हमारे कविने कविताके बारेमे अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है ' कविता सचमुच पाठक और कविके हृदयको जोडनेका साधन है या एक मानव हृदयको दूसरे मानव हृदयके साथ । [२] इन पक्तियोंका *सीधा-सादा अथ भी यही है कि कवि अपनी अनुभूतियोंसे* सहृदय मानवको मानव सुलभ मानसिक प्रवृत्तियोकी रागात्मक अभिव्यक्ति द्वारा प्रभावित करता है । हमारे कविके शब्दोंमें

डालता सब पर सदा कवि
निज हृदयकी स्नेह छाया । [३]

---

१ मधुशाला–पृष्ठ ८५
२ सोपान – भूमिका पृष्ठ ८
३ मधुकलश– पृष्ठ ३६

हमारे कविने कविताको जीवनसे हटाकर कभी ग्रहण नही किया। उनके ही शब्दोमे,

कविता, जगतीके प्रांगणमें
जीवनकी किलकारी।[१]

इतना ही नही, हम देखते हैं कि सरलता एवं सरसताकी दृष्टिसे कविकी कविता सपूर्ण हिंदी साहित्यमे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, साधारणसे साधारण जन भी उसका काव्यानद लूट सकता है। उन्होंने स्वय ही कहा है कि वे कठिन काव्यके प्रेतकी छायासे दूर रहना पसद करते है—

कठिन काव्यके प्रेत, न डालो
मुझपर अपनी छाया,
सरल स्वभाव, सरल जीवनको
मैंने मन बनाया।[२]

जीवनके सपर्कमे उत्पन्न कविता भावसपन्न बनती है, उसमे रागात्मकता और स्वाभाविकताके गुण भी आ जाते हैं और ऐसी ही रचनाएँ मानवमात्रको प्रभावित करते हुए युग-युग तक जीवित रहती हैं। हमारे कविने मधुबालाकी भूमिकामे लिखा है, " एक प्रगतिशील महोदयने मुझसे एक दिन कहा, " बच्चनजी, आप जनवादी कविताएँ क्यो नही लिखते ?" मैंने कहा " मैं तो जनवादी कविताएँ ही लिखता हूँ। जनवादी कविता वह है जिसको जनता पढ़े, सुने, अपनाए। काव्यप्रेमी जनता वाद-विवादके चक्करमें नही पडती, यह तो समालोचककोंके चोचले हैं, वह तो देखती है कि रचनामे रस है कि नही।"

इन पक्तियोसे जहाँ कविके जनवादी दृष्टिकोणका परिचय मिलता है, वहाँ उनके काव्यकी आत्मा रस माननेका दृष्टिकोण भी लक्षित होता है जिसका उद्देश्य है जनसाधारणका आनद। उन्होने यही भाव इन पक्तियोमे भी रखा है।

---

१. आरती और अगारे– पृ. ५५.
२. वही– पृष्ठ ५५

मूढो, मैंने अब तक उसको
कभी नहीं सुपमा समझा
जिसके निकट पहुँचते ही
आनद नहीं मैंने पाया ! [१]

डॉ रमेशचद्र गुप्तने अपने शोधप्रबध "आधुनिक हिंदी कवियाके काव्य सिद्धात" मे पृष्ठ ४६८-४६९ पर लिखा है, "जीवनके प्रति आस्था रखनेवाले कविके हृदयमे अनुभूतिकी महानता होती है और इसीके फलस्वरूप वह सहृदयको संवेदित करनेवाली रचना प्रस्तुत करनेमे सक्षम होता है। इसके अतिरिक्त सफल कविताकी रचनाके लिए यह भी अनिवार्य है कि कवि अपने आपको उसमे सर्वथा लीन कर दे। उसकी अभिव्यजना भावोकी अनुगामिनी होनी चाहिए।' इसलिए बच्चनने लिखा है- कलाकार वह बडा यकलापर अपनी जो हावी होता है।' [२] यहाँ कलासे कविका अभिप्रा "भावनाकी तीव्रता और अभिव्यजनाकी शक्ति दोनोसे है। [३] हम जीवनके प्रति आस्था रखनेवाली कविकी स्वीकारोक्तियोको देखें या उससे पलायन प्रवृत्तिको देखें तो ही हम उपरोक्त कथनके आधारपर इन कविताओंकी शाश्वतता या नश्वरतापर कुछ सोच सकेंगे। हमारे कविने 'आरती और अगारे की भूमिकामे कहा है समाजसे पलायनकी प्रवृत्ति भी समाजमे रहकर जगती है। मेरा व्यक्ति भी समाजमे विकसित हुआ है और मेरी अभिव्यक्ति भी समाजमे विकसित हुई।' [४] और भी मैं जीवनकी वास्तविकताओका आदर करता हूँ उन्हे प्यार भी करता हूँ। कविता इसलिए नहीं लिखी कि और कुछ कर नही सकता या करना नही चाहता-

सब जगह असमर्थ हूँ मै इस वजहसे तो नहीं तेरा हुआ हूँ।

---

१ मधुकलश पृष्ठ २
२ आरती और अगारे पृष्ठ ११३
३ आधुनिक हिंदी कवियाके काव्य सिद्धात-पृष्ठ ४६८-६९
४ आरती और अगारे-पृष्ठ १०

वास्तविकताएँ न हों तो जीवनका कोई अर्थ नही। कविताके बिना जीवनका अर्थ हो सकता है। लिखनेके लिए मैं नही जीता, जीवन प्रशस्त करनेके लिए लिखता हूँ। अगर मुझसे कोई कहे कि जाओ, आजसे तुम्हारी सारी फिक्रें मैंने अपने ऊपर ले ली, तुम आरामसे लिखो, तो मेरा लिखना बद हो जाएगा। कविका यही चित्र मेरे मनको भाता है—

बोझ सिर पर, कण्ठमें स्वर।[1]

कवि तो एकातमें गुनगुनाया करता ही है। वह अपनी अनुभूतियोको एकातमे ही शब्दोमे पिरोता है। खैयाम भी जब एकातमे गुनगुनाकर गा उठता तब लोग सदेह करते कि सभवत उसके कक्षमें कोई है और उसे इस आरोपमे, बुखारामे, कैदमे भी रहना पडा। कविने 'मधुकलश' मे अपनी भी ऐसी ही भावनाको व्यक्त किया है और बताया है कि उन्होंने ये सारे गीत जीवन-समरमे खडे होकर लिखे हैं, भागकर नही। चीत्कारका अर्थ भागना या पलायन नही जैसा कुछ समीक्षकोंने लिया है। कविकी पक्तियाँ—

रागके पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन,
है लिखे मधुगीत मैंने हो खडे जीवन समरमें।[2]

'मधुशाला' जिसे पलायनवादी काव्यके अतर्गत रखा जाता रहा है, उसमे भी तो हम जीवनका विशद एव विविध अवस्थाओका वर्णन प्राप्त होता है। मुझे तो एक भी कविता ऐसी नही मिली जिसमे जीवनकी झलक न रही हो। जीवनमे प्रत्यक्ष एव परोक्षमे भी सघर्ष बना ही रहता है। व्यक्ति परोक्षके लिए प्रत्यक्षको भी छोड देता है, इसमे हमारी धार्मिक भावनाओका बडा हाथ रहा है। कविवर गालिबको भी कहना पडा था—

हमें मालूम है जन्नतकी हकीकत लेकिन
दिलको खुश करनेको गालिब ये खयाल अच्छा है।

---

१. आरती और अगारे—पृ० १२
२. मधुकलश—पृष्ठ ५४

पर मानव मन इस ऊपरी सतोषवृत्तिको–धोखेको–कब तक अपना सकता है ? वास्तविक विश्वास तो आत्मपरिचय–आत्मज्ञान ही है और मधुशालाके गीतोंमे इन बातोंको रूपकात्मक रूपमे प्रस्तुत किया गया है।

हमारे कविने त्रिभगिमाकी भूमिकामें लिखा है, " वही कवि सबसे अधिक समझा जाएगा जो अपने युग-समाजकी सघटना, मूलभूत, व्यापक और तत्वपूर्ण सवेदनाओंसे स्वय प्रेरित हो और दूसरोको भी प्रेरित करे। और कोई भी रचना अपने युग-समाजसे अस्पृष्ट अथवा अप्रभावित नही रह सकती, पर उनके साथ दो और सत्योपर भी दृष्टि रखनी चाहिए– युगके साथ शाश्वतपर, समाजके साथ व्यक्तिपर। युगकी समस्त परिवर्तनशीलता और विविधताके साथ शाश्वतका अश अभिन्न रूपसे जुडा हुआ होता है। "[१]

उक्त बातोका परिचय हमें कविका सपूर्ण काव्य देता है। जहाँ उन्होंने बगालके अकालके समय 'बगालका काल' नामक काव्य लिखा, 'सूतकी माला', 'खादीके फूल' एव 'धारके इधर उधर' तो उनकी स्वतत्र रूपसे राष्ट्रीय भावनापरक काव्य-कृतियाँ हैं पर उनकी राष्ट्रीय भावनाओ – सामयिक परिस्थितियोका सजीव चित्र अकित करनेवाली कविताएँ उनके हालावादी युगकी रचनाओमे भी यत्र-तत्र मिलती हैं जिनसे कुछ उदाहरणार्थ हम लेगें। पर हमारा कवि तो मानता है कि सामयिक समस्याएँ अपनेमे ही क्षणिक होती हैं जो कुछ समयके पश्चात भुलायी जाती हैं और उनपर लिखा गया साहित्य भी इस कारण सामयिक ही होता है। पर कलाकार अपनी प्रतिभासे उस सामयिक रचनामे भी शाश्वतताका गुण भर देता है। और हमे इसका पूरा पूरा परिचय सामयिक बगालके अकालकी समस्यापर लिखी हुई रचना देती है कि वह आज भी अपना वही सदेश बनाये हुए है। उनके शब्दोंमे, " काव्यका काम है सामयिकको भी छूकर शाश्वत बनाना, कम-से-कम चिरजीवी बनाना। सामयिक स्वय भी अपने बाहरी रूपमे अल्पस्थायी भले ही हो, पर अपनी

१ त्रिभगिमा–भूमिका–पृष्ठ ८

भावनामे यह अन्य रूपोंमे प्रतिध्वनित होता रहता है।"[१] उनकी बगालके कालकी निम्न पक्तियाँ इस दृष्टिकोणपर प्रकाश डालेगी जिनमे कविने परासकी क्रांति और बरसाईके विषयमे लिखा है—

बरसाइयाँ बहुत है अब भी,
शायद क्रूर कठिन पहलेसे,
बरसाएंगी तुमपर गोली
और तुम्हे मरना भी होगा!
लेकिन इतना निश्चित जानो
मरकर भी तुम जी पाओगे,
जीनेसे तुम मर जाओगे।[२]

हमारे कविने कभी भी अपने पाठकोपर अपनी पुस्तके बोझ रूपमे नही डाली, वे तो मानते हैं कि वे अपनी रुचिसे उन्हे अपनाएँ और अपनी भावनाओका उसमे परिचय पाकर अपनाएँ। कविके शब्दोंमे "आप मेरे पाठक हैं तो मैं मान लेता हूँ कि आपने मेरी अभिव्यक्ति-को उसकी स्वाभाविकता, उसके व्यक्तित्व आकर्षण, उसकी सजीवता-सागिकता और उससे सह एव सम अनुभूतिके कारण स्वीकार किया है।"[३] इसका ज्वलन्त प्रमाण तो यह है कि हमारे कविकी समस्त रचनाओके अनेक सस्करण निकल चुके हैं जहाँ कि उनकी पुस्तकोंने पाठ्य-पुस्तकोंमे स्थान नही पाया और अन्य महान् कवियो एव साहित्यकारोकी रचनाओंके उतने सस्करण तो तब भी नही निकल पाये हैं जब कि वे पाठ्य-पुस्तकोंमे भी नियुक्त हैं।

हमारे कविने भारतमाताको साकीके रूपमे किस तरह प्रस्तुत किया है, जरा देखिए कि किस तरह हमारी भारतमाता अपने ऊपर बलि चढानेवाले पुत्रोके रक्त रुधिरमय हालाको (उनकी रुधिराक्त

---

१. धारके इधर उधर-भूमिका-पृ ६
२. बगालका काल-पृ ८१
३. आरती और अगारे-भूमिका-पृ. १०

गाथाओंकी हालाको) लेकर साकी बनकर अन्य लोगोंको देशभक्तिके नशेमें उन्मत्त करना चाहती है—

> वीर सुतोंके हृदय रक्तकी
> आज बना रक्तिम हाला,
> वीर सुतोंके वर शीशोंका
> हाथोंमें लेकर प्याला,
> अति उदार दानी साकी है
> आज बनी भारतमाता
> स्वतन्त्रता है तृषित कालिका
> बलिवेदी है मधुशाला।[१]

उसी विचार धारामें एकताकी कड़ीको जोड़ते हुए हमारा कवि उन्हें एकताके लिए प्रेमकी हाला पिलाकर एक करना चाहता है। आज भी हम जानते हैं कि मंदिरों मस्जिदोंने प्रेमका पाठ पढ़ानेकी अपेक्षा धार्मिक कट्टरता एवं संकुचित दृष्टिकोणका वितरण करते हुए हमें आपसमें लड़ाया है मिलाया नहीं—

> मुसलमान औं हिंदू हैं दो
> एक, मगर, उनका प्याला
> एक मगर, उनका मदिरालय,
> एक मगर उनकी हाला
> दोनों रहते एक न जब तक
> मस्जिद-मंदिरमें जाते
> बैर बढ़ाते मस्जिद-मंदिर
> मेल कराती मधुशाला![२]

उन्हीं दिनों हमारे विश्ववंद्य बापू अस्पृश्यता आंदोलन चला रहे थे। कविकी रचनामें वह भी स्थान पाकर कितनी निखर उठी है! हमें तो बस प्रेम-सुराकी शरण लेनी चाहिए जहाँ ऊँच-नीचका प्रश्न ही नहीं उठता छुआछूतका प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। हमारे

१ मधुशाला–पृ ४७
२ वही–पृ ५०

सुधारक मात्र व्याख्यान देते रहते हैं पर उनके व्यवहारिक जीवनमे उसका कितना अभाव है, इसे जग जानता है। बापूजीने ही जब अपने जीवनमे साबरमती आश्रममे इसके लिए अपने साथियो द्वारा अवहेला सहन की है वह भारतीय जनतासे छिपी नही, तब सर्वसाधारणकी तो बात ही क्या है? पर प्रेम-मदिरालयके पियक्कडोमे छुआछूतके लिए स्थान ही नही, वे किसीसे कोई गिला नही रखते; उनमे साम्य भावकी प्रधानता पायी जाती है। आज सुधारवादी लोगोमे दिखावेकी भावना दिखाई देती है पर मदिरालय (प्रेम-मदिरालय) तो बातो द्वारा नही, आचरण द्वारा अपना प्रचार-कार्य करता है। देखिए हमारे कविका कथन—

कभी नहीं सुन पडता, 'इसने
हा, छू दी मेरी हाला,'
कभी न कोई कहता, 'उसने
जूठा कर डाला प्याला,'
सभी जातिके लोग यहाँपर
साथ बैठकर पीते हैं,
सौ सुधारकोंका करती है
काम अकेली मधुशाला। [१]

अनेक लोगोने स्वतत्रता सग्राममे अपने प्राणोकी वलि चढायी, मातृभूमिका कर्ज उतारनेका प्रयत्न किया। पर जैसे-जैसे वे मिटते, लुटते, उनका रग गुलहजाराकी भाँति भूमिपर निखर उठता—

इस तरहसे जा रहा है मातृभूका ऋण उतारा;
आज उपवनमें हमारे लुट रहा है गुलहजारा। [२]

यह गुलहजारावाली कविता कितनी भावगर्भित है कि किस तरह देशप्रेमके बीज बोये गये हैं, वे पनपने लगे हैं, खिलने लगे हैं,

---

१. मधुशाला–पृ. ५३
२. मधुकलश–पृ १०३

पर वे फूल अपनी मातृभूमिपर न्योछावर होनेमे ही अपने जीवनकी सार्थकता पाते हैं।

'मधुबाला' मे 'बुल्बुल' शीर्षकके अतर्गत गीत जहाँ एक ओर कविपर लगाये गये आरोपोकी प्रतिक्रिया दिखायी देते हैं वहाँ वे कविका आत्मपरिचय प्रस्तुत करनेमे भी बहुत ही सफल गीत माने जा सकते हैं। हम जानते हैं कि बुलबुल भारतीय पक्षी नही। जैसे भारतमे *कोयल कविके प्रतीक रूपम आती है वैसे ही ईरानी साहित्यम* बुल्बुल। बुलबुलकी विशेषता जहाँ गीत गाना है, वहाँ यह भी है कि वह सेवाकी, विश्वकल्याणकी कामना रखनेवाला पक्षी भी स्वीकारा गया है। 'बुल्बुल' के अतर्गत गीतोका अवलोकन करनेसे विदित *होगा कि हमारा कवि जागृतिके ही गीत गाता रहा है,* समाजमे रहकर समाजकी मान्यताओ, रूढियो एव धारणाओके प्रति कविके मनम जो अनास्था है, वह यत्र-तत्र प्रकट तो हुई है पर कविका विद्रोह भी छिपा नही रह सका है। आज जहाँ हमारे धर्म-सप्रदायोंने *विभाजनकी दीवारे खडी कर दी हैं हम दूसरी ओर देख ही नही* पाते। कवि चाहता है कि हम इन दीवारोको हटाकर देखें तो हम मालूम होगा कि जीवनधारा दोनो ओर समान गतिसे प्रवाहित दिखायी देगी। पर क्या हमारे समाजके ठेकेदार, धर्मके ठेकेदार हमे दीवारे तोडने देंगे ? नही। इसीलिए तो हमारा कवि क्रातिकी *विचार धारा लेकर आया है—*

> विभाजित करती मानव जाति धरा पर देशोकी दीवार,
> जरा ऊपर तो उठकर देख, वही जीवन है इस-उस पार,
> घृणाका देते हु उपदेश, यहाँ धर्मोके ठेकेदार,
> खुला है सबके हित सब काल हमारी मधुशालाका द्वार,
> करें आओ विस्मृत वे भेद रहे जो जीवनमें विष घोल
> क्रांतिकी जिव्हा बनकर आज रहो बुलबुल डालोंपर बोल। [1]

और हमारे कविकी बुलबुल,

> *सजग करती जगतीको आज रहो बुलबुल डालोंपर बोल।* [2]

१ मधुबाला–पृष्ठ ९०–९१
२ वही–पृष्ठ ९२

एवम्

लिये निजवाणीमें विद्रोह,　　　रही बुलबुल डालोंपर बोल। [१]

जो बुल्बुल क्रांतिका सदेशवाहक बनी बैठी है, जो विश्व-जागृति-का कार्य कर रही है, जो निज वाणीमे विद्रोह भरे हुए है क्या उसे हम किसी तरह पलायनवादी कह सकते हैं ? द्वेष भावसे तो कुछ भी कहा जा सकता है पर काव्यकी समीक्षा द्वेष भावसे नही, सहानुभूति भावसे अवश्य होनी चाहिए।

हमारे कविने पुनरुत्थान युगकी प्रमुख धारा कर्मवादसे कभी मुख नही मोड़ा। वे तो सतोषको मनुष्यके पतनका कारण बताते रहे हैं, वे सन्यासके भी कभी प्रशसक नही रहे क्योकि सतोषधन रखनेवाले लोग हर स्थितिमे खामोश रहकर मरना पसद करते हैं और वैरागियो-का तो ससारसे सबध ही कहाँ रहता है ? कवि कहता है कि वे अपनी सीमाओमे इतने घिरे हैं कि वे उन्हे छोडकर कुछ देख ही नही सकते। यहाँ तो जग-जीवनसे अनुराग रखनेवाले व्यक्ति ही चाहिए—

जिन्हें जग जीवनसे सतोष,　　उन्हे क्यों भाये इसका गान ?
जिन्हे जग जीवनसे वैराग्य,　　उन्हे क्यों भाये इसकी तान ?
हमें जग जीवनसे अनुराग,　　हमें जग जीवनसे विद्रोह,
इसे क्या समझेंगे वे लोग,　　जिन्हें सीमा बधनका मोह। [२]

कुरुक्षेत्रमे कविवर दिनकरने अपनी सन्यासके प्रति अनास्था दिखायी है। वे तो उसे मनुष्यकी कायरता पुकारते हैं:-

धर्मराज! सन्यास खोजना कायरता है मनकी
है सच्ची वीरता, ग्रथियाँ सुलझाना जीवनकी।

महाकवि प्रसादजीने तो सुखमे बसुध लोगोको ससारके दुख दारिद्रयसे सर्वथा अपरिचित बताया है, क्योकि उन्हें इसके लिए अवकाश ही कहाँ है ?

---

१ मधुबाला-पृष्ठ ९२

बेसुध जो अपने सुखसे जिनकी है सुप्त व्यथाएँ
अवकाश भला है किनको सुननेको करुण कथाएँ । [१]

फिर अगर ऐसे लोगोंने कविकी निंदा की तो उसमें अस्वाभाविकता क्या है ? पर कवि अपनेको निंदा-स्तुतिसे ऊपर उठाकर अपना गान गाये जाना चाहता है हालाँकि हम यह कविके शब्दोंमे ही व्यक्त कर आये हैं कि उन्होंने अपनी कटु आलोचनाओंकी प्रतिक्रियाके रूपमे भी लिखा है, जो यत्र-तत्र मिल जाता है –

करे कोई निंदा दिन-रात,
सुयशका पीटे कोई ढोल,
किये कानोंको अपने बद,
रही बुलबुल डालोंपर बोल । [२]

इस ससारमे जन्म लेकर उसमे रहकर भी तो हम उसे समझ नही पाते, वह एक अनबूझ पहेली-सा बना हुआ है, हालाँकि आज तक न जाने कितने विद्वानोंने इस विषयमे अपने मत व्यक्त किये हैं, कितनी बार यह शरीरका प्याला टूटा बना है, उसमे कितनी बार जीवन-मदिरा भरी गयी है —

कितने मर्म जता जाती है बार-बार आकर हाला,
कितने भेद बता जाता है बार-बार आकर प्याला,
कितने अर्थोको सकेतोंसे बतला जाता साकी,
फिर भी पीनेवालोंको है एक पहेली मधुशाला । [३]

और ससारको प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने दृष्टिकोणसे देखता रहा है–

जितनी दिलकी गहराई हो उतना गहरा है प्याला,
जितनी मनकी मादकता हो उतनी मादक है हाला,
जितनी उरकी भावुकता हो उतना सुन्दर साकी है,
जितना हो जो रसिक, उसे है उतनी रसमय मधुशाला । [४]

---

१ आँसू–पृष्ठ १३
२ मधुबाला–पृष्ठ ९३
३ मधुशाला–पृष्ठ ८८
४ वही–पृष्ठ ८९

महात्मा कबीरने संसारकी नश्वरताको निरख, कालकी करालता-को परखकर कहा था —

> झूठे सुखको सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
> जगत चबेना कालका, कुछ मुखमें कुछ गोद।।

हमारे कविने संसारको कालरूपी पियक्कड़की मधु-कटु जीवन मदिरा युक्त मधुशाला बताया है, जहाँ काल अपनी सैंकड़ा जिह्वाएँ, हाथ फैला फैलाकर मिट्टीके शरीररूपी प्यालासे जीवनरूपी मदिरा पीता रहता है —

> क्षीण, क्षुद्र क्षण भंगुर, दुर्बल मानव मिट्टीका प्याला,
> भरी हुई है जिसके अंदर कटु मधु जीवनकी हाला,
> मृत्यु बनी है निर्दय साकी अपने शत शतकर फैला,
> काल प्रबल है पीनेवाला संसृति है यह मधुशाला[1]

पर इस नश्वर, क्षीण क्षणिक जीवनके अधिकारी मानवको कविने कभी हेय नहीं माना। वह तो उसे सदा सर्वदा महान प्रतीत हुआ है—

> विराग मग्न हो कि राग रत रहे
> विलीन कल्पना कि सत्यमें दहे
> धुरीण पुण्यका कि पापमें बहे
> मुझे मनुष्य
> सब जगह महान है। [2]

किसी भी साहित्यकारकी रचनापर उसके युगकी छाप अमिट रूपसे रहती है। साहित्यकारको समझनेके लिए उसके प्रति पूरा न्याय करनेके लिए तो यह नितांत आवश्यक हो जाता है कि उसकी समस्त कलाकृतियोंको एक मानकर उनका परीक्षण किया जाए। इससे एक तो कविके भावजगत तथा कला-पक्षके क्रमिक विकासका पता लगेगा और केवल कुछ बातों या भावोंके आधारपर उसे किसी पथ या वादसे जोड़नेकी बात न उठेगी। हमारे कुछ समीक्षकोंने हमारे कविको मात्र

१ मधुबाला–पृष्ठ ६१
२. मिलनयामिनी–पृष्ठ २२७

तीन पुस्तकोंके आधारपर ही परखनेका प्रयत्न किया है किंतु वहाँ भी वे अपना सकुचित दृष्टिकोण और पक्षपातमयी भावना नहीं छोड पाये हैं उनमे उदारताका अभाव रहा है और उदारताके अभावम समालोचना साहित्यकी घातक होती है, पोषक नही। समीक्षाको साहित्यके पोषक रूपम ही ग्रहण करना मैं उचित मानता हूँ। मैंने ऊपर विशेष रूपसे उन तीन रचनाओंके ही उदाहरणोंस कविपर लगाये हुए दोषारोपणको झूठ साबित करनेका प्रयत्न किया है। अब हमें यह देखना होगा कि कविकी इन भावनाओका उसकी अन्य रचनाओंमे कहाँ तक क्रमिक विकास दिखायी देता है।

निशा निमत्रण जो कविकी निराशाकी परिचायक रचना मानी जाती है कवि अपनी दिवगता पत्नी श्यामाकी स्मृतिम रातें जागकर बिताता है पर उसमें भी कविके पलायनवादी होनेका परिचय नही मिलता। वह उस निराशामय पथपर भी बढ़ते रहना ही चाहता है। चाहे आज जीवनका ध्येय नही रहा हो पर पथ शष है और राहमे रुकना राहीके लिए कब शोभनीय है ? और रुककर बैठनेवाला दुनियाके लिए तमाशा बन जाता है ? कविकी यह धारणा कि वह तो चिता निकट भी अपने पैरोसे चलकर पहुँचना ही पसद करेगा दूसरोका अवलब लेकर बैठना उसे श्रेयस्कर नहीं। उनकी महानताका द्योतक ही है —

ध्येय न हो पर हैं मग आगे,
बस धरता चल तू पग आगे,
बैठ न चलनेवालोंके दलमें तू आज तमाशा बनकर !

मानवका इतिहास रहेगा
कहीं, पुकार-पुकार कहेगा—
निश्चय था गिर मर जाएगा चलता किंतु रहा जीवन भर !

जीवित भी तू आज मरा सा
पर मेरी तो यह अभिलाषा—

चिता-निकट भी पहुंच सकूं मैं अपने पैरों-पैरों चलकर !
तू क्यों बैठ गया है पथपर ? [१]

हमारा कवि तो बस, गीताके कर्मवादको अपने जीवनका आदर्श बनाये हुए है, वह केवल दर्शनका उपदेश देनेवाला नहीं, वह सर्वप्रथम उसे अपने जीवनमें उतारे हुए है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' की भावनाका कितना सुंदर परिचय यह गीत देता है कि हमारे कविको सफलता-विफलताका पता तक नहीं, वह तो मात्र चलना जानता है :

है हार एक तरफ पडी,
है जीत एक तरफ खडी,
संघर्ष-जीवनमें धंसा, यह भी नहीं मैं जानता—
किस ओर मैं ? किस ओर मैं ? [२]

कवि तो जीवनको समर-भूमि ही नहीं, अग्नि-पथ भी मानता है। पर कवि मानवको निराश–पलायनवादी नहीं बताता। वह उसे रोते-हंसते भी उसी पथपर अग्रसर होता दिखाता है और कविका संकेत तो यही है कि जब इस पथसे विमुख हुआ नहीं जा सकता, फिर रोकर आगे बढनेकी अपेक्षा मुस्कराते हुए आगे बढना ही अच्छा होगा :–

यह महान दृश्य है—
चल रहा मनुष्य है
अश्रु–स्वेद–रक्तसे लथपथ, लथपथ, लथपथ !
अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! [३]

कविने जीवन पथकी चुनौतीको कहीं अवहेलामयी नजरसे नहीं देखा। उसे विश्वास है कि कहीं कोई उसकी प्रतीक्षामें है, घरमें भी और उस पार भी (कविका अपनी दिवगता पत्नी श्यामाकी ओर इंगित हो या ईश्वरके प्रति जो मानो अपने भक्तप्रेमी जीवात्माकी प्रतीक्षामें आँखें बिछाए हो) उसकी प्रतीक्षामें खडा है और उससे

१. निशागीत–पृष्ठ ११८.
२. एकांत संगीत–पृष्ठ ४०.
३. वही– पृष्ठ ८५.

मिलनकी अभिलाषा लिये कवि पथकी चुनौतीको स्वीकार करता है क्योंकि साधनके सिवा साध्य तक पहुँचा ही कैसे जा सकता है ? राहके सिवा मंजिल कैसी ?

पथ जीवनका चुनौती
दे रहा है हर कदम पर,
आखिरी मंजिल नहीं होती
कहीं भी दृष्टिगोचर,
धूलिसे लद, स्वेदसे सिंच,
हो गयी है देह भारी,
कौनसा विश्वास मुझको
खींचता जाता निरंतर ?—
पथ क्या, पथकी थकन क्या,
स्वेद कण क्या
दो नयन मेरी प्रतीक्षामें खड़े हैं । [1]

फिर जीवनमें तो इतना शोरगुल मचा हुआ है, आपा धापी मची हुई है कि कहीं बैठकर सोचनेका अवकाश कहाँ मिलता है, वहाँ तो बस, करना ही अभीष्ट है सोचनेवाले शायद कर्मपथसे कुछ समयके लिए ही क्यों न हो बच जाते हैं ।

जीवनकी आपा धापीमें कब वक्त मिला,
कुछ देर कहीं पर बैठकर कभी यह सोच सकूँ,
जो किया कहा माना उसमें क्या बुरा-भला । " [2]

उनके इसी गीतका दार्शनिक मोड़ भी हमें मिलता है, जहाँ जीवात्मा इस जीवनमें आकर अपनेको संसारके मेलेमें धकमधक्कीमें पाती है, भौंचक्की रह जाती है सोचने लगती है कि वह कहाँ आ गयी है, क्या करे पर वहाँ सोचनेका अवकाश कहाँ मिलता है ? किसी धक्केके प्रवाहमें आकर वह भी इस जीवनमें बहने लगती है । इसमें कविके भाग्यवादी, नियतिवादी होनेका परिचय हमें भले ही मिलता

१. सतरंगिनी– विश्वास–पृष्ठ १७१-७२
२. मिलनयामिनी– पृष्ठ १८९

हो पर आत्माको नित्य ही प्रवाहित बनाकर उसने उसे कर्मपथसे अलग नही बताया–

> हर एक यहाँ पर एक भुलावेमे भूला,
> हर एक लगा है अपनी अपनी ले-दे में
> कुछ देर रहा हक्का-बक्का, भौंचक्का-सा–
> आ गया कहाँ, क्या करूँ यहाँ, जाऊँ किस जा ?
> फिर एक तरफसे आया ही तो धक्का-सा,
> मैंने भी बहना शुरू किया उस रेलेमें।" [१]

कविने अपने ऊपर लगाये गये आरोपोका प्रतिकार भी अपनी कवितामे किया है। लोगोने (समीक्षकोने) उन्हे पदच्युत बताया जो अपने स्थानसे गिर गया हो। पर कवि तो इसमे भी सतोषकी सांस लेना है क्योंकि वह जानता है कि–

> गिरते हैं शहसवार ही मैदाने जंगमें
> वह बच्चा क्या गिरेगा जो घुटनों केवल चले ?

और हमारा कवि भी तो कहता ही है–

> सिद्ध गिरकर कर दिया मैंने कि अपनी
> शक्ति भर ऊपर उठा मैं। [२]

हमारा कवि तो मानवका उपासक है, पाषाणका नही। मानव तो अपने जीवनमे हारता भी है। वह अगर हमेशा विजयी होता तो फिर उसकी मानवतामे सदेह होता। कविको तो वह मानव ही प्रिय है जो जीवनमे हारता भी है क्योंकि वह सघर्षरत है जिसमे हार-जीत दोनोकी सभावना बनी रहती है। पराजय दूसरी दृष्टिसे अच्छी भी है कि वह मनुष्यको दभी बननेसे बचा देती है। क्या यह सतोका लक्षण नही कि बुराईमे भी भलाई देखें—

> तप, सयम, साधन करनेका
> मुझको कम अभ्यास नहीं हैं,
> पर इनकी सर्वत्र सफलता

---

१. मिलनयामिनी– पृष्ठ १८९
२. प्रणयपत्रिका–पृ. ११८

पर मुझको विश्वास नहीं है
घय पराजय मेरी जिसने
बचा लिया दभी होनेस ।

*   *

जो न कहीं भी हारा एसा
लेकर म पयाण करू क्या
हो भगवान अगर तो पूजूं
पर लेकर इन्सान करू क्या । [१]

हमारे कविने दुखसे कहीं मुँह नही मोडा । वे तो उन दोनोकी सीमा रेखापर ही प्रियतमकी झल्क देखनेवाले हैं । वे तो यह मानत हैं कि सुख एव मिलन व्यक्तिको मार डालता है पर सघषम जीवन है–

झलक तुम्हारी मैंने पायी सुख दुख दोनोंकी सीमापर ।
ललक गया मैं सुखकी बाहो–
मैं जब जब उसने चूमकारा,
औ ललकारा जब जब दुखने
कब मैं अपना पौरुष हारा
आलिगनमें प्राण निकलते
खडग तले जीवन मिलता है । [२]

हमारा कवि तो जीवनके लिए गीत गाना चाहता है, वह गीत गानेके लिए जीना खानेके लिए जीनेके अनुरूप ही व्यथ मानता है । जिस कविकी रचनाम जीवनको सदेश देनेकी शक्ति नही, वे गीत कैसे ?—

गीत गानके लिए जो जी रहे है–
काश जीनेके लिए वे गीत गाते–
और वे पशु जो कि परवस मौन रहकर
बोझ ढोते नित्य मेरे कण्ठमें स्वर, भार सिरपर । [३]

---

१ प्रणयपत्रिका पृष्ठ १२०
२ वही– पृष्ठ– १२२
३ आरती और अगारे–पृष्ठ १४७

हमारा कवि तो ससारकी हर वस्तुमे सौदर्य देखता है, " सुंदर हैं हर चीज यहांपर " [१]। फिर तो यह स्वाभाविक है कि मनमे भाव जगें कि, " किसको छोड़ूं क्या अपनाऊँ " [२]। हमारा कवि तो हर वस्तुसे प्रेम करता है, जो भी जीवनमे आ जाए और मानता है कि साधना, वासना, सुख-दुख, स्वर्ग-नरक, आशा-निराशा तो व्यक्तिके आलिंगनमे बसी हैं वह किसको अलग कर सकता है ? जीवनमे दोनो ही अपने-अपने स्थानपर बनी रहती हैं–

> इस पथपर जो कुछ भी मिलता सबसे मुझको प्यार हुआ है;
> स्वर्ग-नरक, साधना-वासना, सुख-दुख, आशा और निराशा,
> आलिंगनमें बद्ध खडे हैं,
> पाप करूँगा जो अलगाऊँ । [३]

जीवनमे जो फल पाना चाहता हो उसे कांटोंसे भी प्रेम करना पडता है और सौंदर्यकी रक्षाके लिए भी शक्तिकी आवश्यकता होती है पर विशेष बात तो यह है कि सुदर जीवन सघर्षमय जीवन ही है। जिनके मार्ग सुगम, उजले, सरल-सीधे हैं वे जीवित लोगोंके नही, जीवित लोगोको तो पथ बनाने पडते हैं–

> साफ, उजालेवाले, रक्षित
> पथ मरोंके कदरके हैं । [४]

और कविकी दृष्टिमे ससार डरपोकोंके लिए नहीं है–

> कांटोंसे जो डरनेवाले मत कलियोंसे नेह लगाएं,
> घाव नहीं है जिन हाथोंमें, उनमें किस दिन फल सुहाए
> नगी तलवारोंकी छाया—
> में सुन्दरता विहरण करती । [५]

१. आरती और अगारे पृष्ठ– १६७
२. वही पृष्ठ– १६७
३. वही पृष्ठ– १६७
४. आरती और अगारे– पृष्ठ १७५
५. वही– पृष्ठ १७४

हमारा कवि सभवत इसीलिए लडनको प्रिय मानता हुआ कहता है—

मैं सदा ससारसे लडता रहा हूँ,

बस, यही है हार मुझको जीत मुझको।[१]

और आज हमारा कवि अनुभव करता है कि, "उम्र हो मेरी चुकी है बीत जीवन विश्वसे लडते झगडते।"[२]

ससार किसीको ऐसे ही अपना सिरमौर नहीं बनाता, यहाँ तो "अधिकारीका ही होता है इम्तहान।"[३] और इस इम्तहानमें उत्तीर्ण होनेके बाद वह केवल उच्च पदपर आसीन होनेका अधिकारी नहीं बनता। वह बडप्पनकी निशानी है जिसकी दूसरी पहचान यह भी है कि, "उतना ही भारी था उसके कधोंपर बोझ, जो था जितना ही महान्।"[४] 'बुद्ध और नाचघर' की कविता 'रेगिस्तानका सफर' कविके 'मधुकलश' की कविता 'लहरोका निमत्रण' की याद दिलाती है। रेगिस्तानके भयानक मार्ग कविको निराश करनेकी अपेक्षा उसमें उनको पार करनेकी प्रेरणा भरते हैं।

हमारा कवि तो झझावातमें भी झकार सुननेका पक्षपाती है और मानता है कि जिसे वह झनकार प्रिय नहीं होती उसे जीनेका कोई हक नही, जो मिट्टीसे प्रेम नहीं करता भूमिसे प्रेम नहीं करता, उसे जीनेका कोई हक नही—

जिसे झझाकी झनक न भाए,

उसे नहीं जीनेका हक है।

जिसे माटीकी महक न भाए

उसे नहीं जीनेका हक है।[५]

हमारा कवि तो अपनेको प्रकाशका सदेशवाहक मानता रहा है। वह कहता है कि आजकी दुनिया चाहे इस बातका निर्णय न दे सके पर कल्का इतिहास इस बातकी गवाही देगा कि किसकी विजय हुई

---

१ आरती और अगारे– पृष्ठ २०८

२ वही– पृष्ठ २१७

३ बुद्ध और नाचघर– पृष्ठ ५६

४ वही– पृष्ठ ५७

५ त्रिभगिमा– पृष्ठ ३३

और किसकी हार, पर हमारा कवि नित्य ही अंधकारको ललकारता रहा है—

तम आसमानपर हावी होता जाता था,
मैंने उसको ऊषा किरणोंसे ललकारा,
इसको तो खुद दिनका इतिहास बताएगा,
थी जीत हुई किसकी औ' कौन हटा हारा,
मैं लाया हूँ
संघर्ष प्रणयके गीतोंको,
मन भाया हूँ । [१]

हमारा कवि तो विश्वसे, जगतसे प्रेम करनेवाला है, जगत् चाहे कैसा ही क्यो न हो, कविने संसारमें पायी हर वस्तुसे अपने जीवनको सजाया है —

यदि यह सुखमय तो दुखमय है वह कोना,
क्या मृदुल कुसुम, क्या चुभनेवाला काँटा,
सबसे अपना श्रृंगार किया है मैंने।
तेरी दुनियासे प्यार किया है मैंने। [२]

दुनियाको चाहे मिथ्या माना जाता रहा हो, फिर भी तो दुनियाके संबंध टूटे नही टूटते, दुनिया छूटे नही छूटती। हमारा कवि कर्मको प्रधानता देनेवाला रहा है, इसलिए वह संसारको झूठ नही मान सकता। जीवनमे सुख-दुख दोनो हैं मिलन, विरह दोनो हैं, पर आदमी है कि आशा लिये जीवन जिये चला जा रहा है। जीवन तो एक संघर्ष ही है और हमारे कविका कथन है कि उसने इस द्वंद्वको ही छंदोमे साकार किया है —

उन्माद मिलनका झूठ नहीं हो सकता,
अवसाद विरहका झूठ नहीं हो सकता
मंजिल जब तक उम्मीद न देती जाए,
कोई जीवनका भार नहीं ढो सकता।

१. त्रिभंगिमा—पृष्ठ ७५
२. वही—पृ ९१

इस दर्द, खुशी आशाकी सच्चाईको,
इन द्वन्द्वोंमें जीनेकी कठिनाईको,
छन्दोंमें कुछ साकार किया है मैंने । [१]

कविवर प्रसादने प्रेम पथिकमें पथिककी सीमाओंका अत्यंत सुंदर चित्र अंकित किया है —

इस पथका उद्देश्य नहीं है, श्रांत भवनमें टिक रहना,
किंतु पहुँचना उस सीमापर, जिसके आगे राह नहीं ।

हमारे कविकी वाणी भी कुछ मिलती-जुलती ध्वनि लिये है —
जगके पथपर जो न रुकेगा,
जो न झुकेगा जो न मुड़ेगा
उसका जीवन, उसकी जीत । [२]

हमने ऊपर कविका जीवनको संघर्ष मानते हुए, उसकी चुनौतीको स्वीकारते हुए, उससे टकरानेकी भावनापर उनकी रचनाओंके आधार-पर प्रकाश डाला है । पर हमें यह भी देखना होगा कि कविने जीवनके विविध रूपोंका अंकन अपने काव्यमें कहाँ तक किया है । जीवनको किसी एक रूप रंगमें तो पाया नहीं जाता, उसका विस्तार इतना अधिक है कि एक जीवन एक व्यक्ति उसका वर्णन कर ही नहीं सकता । अगर यह संभव होता तो जीवनकी सीमाएँ निश्चित हो चुकी होतीं क्योंकि अनेक कवि कलाविदोंने उसका अंकन किया है । फिर भी यह अंकन होता रहा है, होता रहेगा । प्रत्येक साहित्य-कारने जीवनका अंकन करनेमें अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोणका ही अवलंब लिया है जो सहज स्वाभाविक भी है । हम अपने कविके प्रस्तुत किये जीवन चित्रके लिए, व्यवहार क्षेत्र सामयिक परिस्थिति-योंका अंकन (गांधीवाद हिंसा-अहिंसा छूआ-छूतकी भावना ऊँच-नीचका भेद भाव एवं युगकी समस्याएँ) सुख-दुःख वर्णन, नीति, प्रेम मानवता आदि विषयोंपर कविकी विचार धाराका परिचय पाएँगे ।

---

१ त्रिभंगिमा-पृ ९२
२ वही-पृ ११९

नीति और युग

ससारकी विशेषता है कि वह किसीको भी न आरामसे जीने देत है न आरामसे मरने। उसे दूसरोकी आलोचनामे बडा ही आनद आता है। हमारे कविको तो अपने व्यक्तिगत जीवनमे ही इसके अनेक प्रमाण कटु आलोचनाओ द्वारा मिल गये थे। ये बाते व्यक्तिगत होते हुए भी समष्टिगत है। ससारमे कोई साधू बनकर जीता है तो भी ससार उसकी आलोचना करता ही है। ससार तो केवल ढोगी लोगोके जीनेका स्थान है जो अपनी वास्तविकता छिपाना जानते हो। जो खुलकर आते हैं, समाज, ससार उसपर उँगली उठानेसे बाज नही आता। देखिए —

> गगाजल जब मै पीता था,
> कब दी उसने इज्जत मुझको ? [१]

इसी भावनाको हम हलाहलमे विकसित रूपमे पाते हैं —

> चलायी तुमने पत्थर-ईंट
> देखकर मदिरा मेरे हाथ,
> तुम्हारे हाथ नहीं हैं ज्ञात
> हलाहल गो अब मेरे साथ,
> तुम्हें है कुछ भी हेय न श्रेय,
> हुए तुम आदतसे मजबूर,
> असाधू हूँ मै लूँ मै मान
> मगर था साधू तो मसूर। " [२]

पाप-पुण्यकी व्याख्या ससारमे सहज नही। प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी दृष्टिकोणसे पाप और पुण्यकी सीमाएँ निर्धारित करता है। पर इतना तो मानना ही पडेगा कि पाप आवरणकी ओटमे किये जाते हैं। जब व्यक्ति अपने पापोका बखान भी करता है, तो वही कार्य पुण्यके अतर्गत आ जाता है पर ससारको यह प्रिय नही :—

---

१. मधुबाला—पृ. ८०
२. हलाहल—पृ ४४

और गाया पाप ही तो
पुण्यका पहला चरण है,
मौन जगती किन कलंकोंको छिपाती आ रही है । [१]

संसारमें प्रत्येक व्यक्ति मित्रकी अभिलाषा रखता है, पर आजके युगमें सच्चे अर्थोंमें मित्र मिलना बड़ी कठिन बात है। आज समवेदना प्रदर्शनके पीछे व्यंग एवं मुस्कराहट छिपी मिलती है। आजका युग तो बस, दूसरेके दुःखमें सुख अनुभव करता है, यहाँ प्रत्येककी राह अलग है, दुख बँटा नहीं करते —

क्यों न ले हम मान हम हैं चल रहे ऐसी डगर पर,
हर पथिक जिसपर अकेला, दुख नहीं बँटते परस्पर,
दूसरोंकी वेदनामें वेदना जो है दिखाता,
वेदनासे मुक्तिका निज हर्ष केवल वह छिपाता,
तुम दुखी हो तो सुखी मैं विश्वका अभिशाप भारी ! [२]

'दोस्तोंके सदमे'[३] नामकी कवितामें हमारे कविने विस्तारपूर्वक मित्रतापर अपने विचार व्यक्त किये हैं। एक दो उदाहरण देखिए —

अजीब होता है इन्सान !
करता है दोस्तकी तलाश,
और जब तक दोस्त हो दुखी,
दोस्तपर हो मुसीबत,
इसको आता है मजा
दिखानेमें हम दर्दी।
पर जो वह फूले फले और हो खुश,
तो इसके सीने पर लोट जाता है साँप। [४]

---

१ प्रणयपत्रिका–पृ ३३
२ आकुल अंतर–पृ ७५
३ बुद्ध और नाचघर–पृष्ठ ८२–९७
४. वही–पृष्ठ ८२

हमारा कवि तो ईंटका जवाब पत्थरसे देनेके सिद्धातमे विश्वास करता है। वह बुराईको मिटानेके लिए बुराईसे भागना पसद नहीं करता, अपितु वही रहकर उससे बुरा बनकर लडनेके सिद्धांतमें विश्वास रखता है :—

कीचडसे लडनेके लिए,
जरूरी है कीचडमें प्रवेश,
बुरेको परास्त करनेके लिए,
आवश्यक है बुराईका हथियार,
बुराईको भूषा, बुराईका वेष,
भगवानको लेना पडा था सूअरका अवतार।[1]

जिस ससारमे पहले पवित्र प्रेमका बोलबाला था आज सीमाएँ और स्वार्थोके घेरे इतने घिर आये हैं कि कुछ कहते नही बनता। कहाँ पपीहेका पवित्र प्रेम जो उसे आकाशमे उठाता है और कहाँ चील और कौए! रूपक अत्यत ही सुदर बन पडा है। इससे अध्यात्म, स्वप्न एव भौतिकवाद सत्यकी ध्वनि भी फूट पड रही है :—

शून्य कोई भी जगह
रहने नहीं पाती
बहुत दिन इस जगतमें।
जिस जगह पर था पपीहेका बसेरा,
अब वहाँ पर
चील कौएने
लिया है डाल डेरा।
सकुचित उनकी निगाहें
सिर्फ नीचेको
लगी रहती निरतर।[2]

ऐसी संकुचित वृत्तिमे किसीके प्राण घुटना सहज स्वाभाविक है। हमारा कवि भी इस घुटनका अनुभव करता है –

१. बुद्ध और नाचघर–पृष्ठ ८५
२. वही–पृष्ठ १२०

और, मडलाते
बना छोटी परिधि ऐसी
कि उसके बीच
सीमित, सकुचित, सपुटित
मेरा प्राण
घुटता जा रहा है। [1]

आजका युग बहुत ही विकृत हो गया है। कविने 'त्रिभगिमा' में 'युगकी विकृतियाँ' नामक कवितामे ऐसी अनेक विकृतियोंकी ओर सकेत किया है। आज मनुष्य अपने तक ही सीमित होता चला जा रहा है। वह अपनेको छोडकर कुछ देखना ही नहीं चाहता –

आँख अपने आपको ही
देख ते सकती नहीं है,
और अपनेसे अलग
अस्तित्व, जीवन, भावनासे
रिक्त दर्पण-सा सभी है। [2]

आज अगर कोई सच्चे मनसे भी सेवा करता हो, त्याग, बलिदान करता हो तो दुनिया उसमे भी कोई स्वार्थ छुपा समझती है, कोई दान देता है तो भी उसपर चोर होनेका अभियोग लगाया जाता है, अगर किसीसे प्रेम करता है तो उसे या तो भावुक माना जाता है या बेवकूफ। अत कवि आजके मानवसे कहना चाहता है कि आज वह अपने लिए ही नही रह गया है, उसे अगर जीना है तो जगकी विकृतियोको देखकर उनके अनुरूप बनकर जीना होगा –

क्योंकि तुझको देखनेवाला नहीं है,
क्योंकि तू अस्तित्व, जीवन, भावनाकी
है नहीं कोई इकाई,
क्योंकि तू दर्पण महज है,

---

१. बुद्ध और नाचघर–पृष्ठ १२१
२ त्रिभगिमा– पृष्ठ १५७

क्योंकि तू अपना नहीं कुछ,
दूसरोंकी सिर्फ परछाईं । [३]

आजके युगकी सीमाओंका चित्र कविके शब्दोंमें देखिए :—

देश घेरा, जाति घेरा, वेश घेरा,
रीति घेरा, नीति घेरा,
अर्थ घेरा, व्यर्थ घेरा,
और घेरे बीच घेरा,
औ' उसीके बीच
मेरा और तेरा । [४]

आजके युगके बहुतेरे काम नामके लिए होते हैं। नामके जादूका वर्णन कविके शब्दोंमें देखिए –

नाम पर ही
आज दुनिया पल रही है
चाल अपनी चल रही है,
और सबको छल रही है,
नामका जादू बडा है । [५]

हमारे कविने 'इन्सान और कुत्ते' नामक कवितामें आजके मनुष्यको कुत्तेसे भी गया-बीता बताया है। आज वह मनुष्य होकर मनुष्यसे मुँह मोडे हुए है। कुत्ते भी एक दूसरेसे मिलकर आनंदित होते हैं पर मनुष्य? मनुष्य मनुष्यसे कोई परिचय ही नही रखता। उसके मशीनवत (यत्रवत) जीवनका भी सुदर चित्र इस कवितामे कविने अंकित किया है। उस कविताका एक अश देखिए जहाँ कविने मनुष्यकी अनागरिकताका व्यगचित्र अकित किया है–

सपृक्त अपनेसे, विरक्त समस्त जगसे,
यदि पडोसीके यहाँ हो मौत चोरी,
तो इन्हें लगता पता अखबार पढकर,
हर्ष और विषाद औ' सवेदनाके,

---

३ त्रिभगिमा–पृष्ठ १५९
४. वही– पृष्ठ १६०
५ „ – पृष्ठ १६१

भिक्षुकोंको
ये फटकने ही नहीं देते हृदयकी देहरी पर,
बिना परिचयसे किसीसे बोलना मिलना
महान असभ्यता है,
ज्ञान औ' मानके विपरीत भी है ।[१]

प्रकृतिदत्त स्वभावकी अगर किसीने अवहेला की है तो मानवने ही—

औ नहीं इन बेहयाओंको अखरती
श्वानकी यह श्वानियत
इंसानकी इंसानियत पर व्यंग करती ।[२]

हमारे कविने हमारे देशकी धार्मिक प्रतिक्रियाओंकी भी झाँकी प्रस्तुत की है। जहाँ एक धर्म अपने विकासके लिए दूसरे धर्मका विनाश करनेमे ही महानता महसूस करता है दूसरे धर्मकी मूर्तियोंको विकृत करनेमें ही अपनी प्रतिष्ठा मानता है जिसका प्रमाण आजके युगमे उपलब्ध होनेवाली विकृत मूर्तियोंसे लगता है। यहाँ बड़ी ही व्यंग्यात्मक शैलीमे कविने विभिन्न धर्म-सम्प्रदायोंकी कलई खोली है। एक-दो उदाहरण देखिए। जहा इसलाम धर्मने अपना धर्म प्रचार करनेके लिए तलवारको अवलंब बनाया और एकेश्वरवादका सदेश देते हुए मूर्तियाँ तोडी, फिर भले ही उनके कवि क्यो न बुतपरस्त रहे हो—

जेरे खंजर भी सुनाया
वहदियत इस्लामका
पैगाम सबको।
हम कहें कुछ
एक था आदर्श उनके पास
जिससे 'बुतशिकन' कहला,
रहे वे गर्व करते,
बुतफरोशी पर न उतरे।

---

१ त्रिभंगिमा पृष्ठ १८८
२ वही—पृष्ठ १९१

और यह है यात,
अपनी शायरीमें बुतपरस्त बने रहे थे। [१]

और आज उन टूटी मूर्तियोंसे घरोकी ड्राइंग-रूमोंकी शोभा बढाना सभ्यता एवं कला-प्रियताका लक्षण माना जाने लगा है:—

अब नया फैशन चल गया है,
भग्न खण्डित मूर्तियोंसे
लोग ड्राइंग रूम अपना है सजाते,
कला-प्रियता सभ्यताका अंग है अब,
इस तरह अपनी कला-प्रियता जताते,
कीमतें अच्छी चुकाते,
बुतफरोशी आज पेशा बन गयी है।
लोग चोरी छिपे जाकर,
मूर्तियोंके हाथ या सिर काट लाते,
और ड्राइंग रूमवाले ग्राहकोंको बेच देते। [२]

हमारे आजके युगकी यह विशेषता बन गयी है कि यह दूसरोंके मालपर फातिहा पढनेमें बडा चतुर बन गया है। किसीका घर जले और हम हाथ सेकें। कोई मरे और हमारा भोज बने। हम उसका सब-कुछ हडप जाएँ। इस भावनाको हमारे कविने "दीपक, पतिंगे और कौए" [३] नामक कवितामें बडी ही सुन्दर रीतिसे प्रस्तुत किया है। जहाँ रातमें दीपकपर अनेक छोटे-छोटे कीडे बडे बननेकी आशामें अपने प्राणोका हवन करते हैं और फिर सुबहको न दीप रहता है, न पतिंगे। रह जाती हैं पतिंगोकी बेजान लाशें जिनपर कौए टूट पडते हैं। कवि कहता है:—

क्या पतिंगे, दीप, कौओंकी कहानी
मानवी संसार दुहराता नहीं है! [४]

---

१. त्रिभंगिमा–पृष्ठ १९८-१९९
२. वही–पृष्ठ १९९
३. वही–पृष्ठ २०१-२०४
४. वही–पृष्ठ २०४

उक्त कविता तो हमारे राष्ट्रीय आंदोलन, स्वातन्त्र्य संग्रामके यज्ञमें प्राणोंकी हवि चढानेवालों और आज राज्यभोग करनेवालोंकी ओर भी व्यंग्यात्मक संकेत प्रस्तुत करती है।

आज-कल भारतमें हम स्वतंत्रता दिन मनाते हैं पर ये तो केवल बडे-बडे शहरों तक सीमित हैं। क्या वास्तवमें हमारा भारत इतना विकास कर चुका है जितना उन दिनोंके प्रदर्शनोंसे प्रकट होता है? क्या देहातोंमे वह प्रकाश पहुँचा है? क्या देहाती लोग गणराज्यकी परिभाषा तक जानते हैं? कविने अपनी व्यक्तिगत अनुभूतिको प्रस्तुत किया है 'गणतंत्र दिवस' नामक कवितामे।[१] वह दिल्लीके निकटवर्ती देहातमे चला जाता है जो दिल्लीसे मात्र २० मीलकी दूरीपर है और वहाँके अधरेमें सडनेवाले कुछ किसानोको अपनी कारमें लाकर दिल्ली घुमाता है। कविने उस देहातकी स्थिति देखकर कहा है —

> घूरका भी भाग
> बारह बरस पर है बदल जाता।
> यहाँ बारह बरसमें कुछ भी न बदला।[२]

कविवर दिनकरने अपने दिल्ली नामक काव्यमे जो देहातोकी स्थिति एव दिल्लीका तुलनात्मक वर्णन करते हुए क्रांतिकी आग जलानेका प्रयत्न किया है यहाँ भी वैसा ही प्रयास है। कवि सोचता है कि शायद —

> आज चार हजार
> साढे तीन सौसे तीन ऊपर
> दिवस बीते रेंगते
> सदेश पर गणतंत्र दिनका
> बीस मील नहीं गया है!
> देश यह कितना बडा है!

---

१ त्रिभंगिमा—पृष्ठ २१२-२१७
२ वही—पृष्ठ २१३

आज दिल्ली देख लकदक
आँख कुछ उनकी खुलेगी,
असतोष कहीं जगेगा,
कहीं चिनगारी उठेगी।[1]

और जब हमारा कवि उन्हें दिल्ली घुमाकर लौटा आया तो उनके कथनका आशय वह न समझ पाया —

बड़ी किरपा की कि आते जी
हमें बैकुठका दर्शन कराया
हमें नरक निवासियोंको !
और इसमें
व्यंग तीखा था
कि थोदी सादगी थी,
मै समझ इसको न पाया ![2]

इससे अधिक प्रगतिशील साहित्य क्या हो सकेगा ? कविवर दिनकरकी रचना 'दिल्ली' के साथ कविकी उक्त कविता एव 'महागर्दभ'[3] कविताकी तुलना कीजिए। दोनो क्रातिका सदेश देती, असतोषका सदेश देती प्रतीत होगी। 'महागर्दभ' कवितामे तो भारतका पूर्ण इतिहास ही कविने प्रस्तुत कर दिया है। भारतीय जनताको कितना उल्लू, गधा बनाया जाता रहा है ! गैरोने तो बनाया पर अपने भी बना रहे हैं। जिन टमाटर और गाजरके आकर्षणमे वे गधेको अलग-अलग दिशाओसे घसीटते रहे हैं आज वे तो अदृश्य हो गये हैं। कवि आजके शासकोपर व्यग ही तो कर बैठा है कि अगर तुम इस गधेसे काम लेना चाहते हो तो उसे कोई आकर्षण दिखाओ और हम देखते हैं कि हमारी सरकार भाग्य, पत्र-पत्रिकाओंमे छापती ही तो रहती है —

---

१ त्रिभगिमा पृष्ठ–२१६
२. वही–पृष्ठ २१७
३. वही–पृष्ठ २२१–२३१

अब गधेकी पीठके ऊपर
सवारी गाँठकर चलना अगर है
तो प्रलोभन प्रेरणा कुछ चाहिए ही।[1]

और,

छोडकर औलाद आरोही गया जो
बापसे कुछ कम नहीं है,
और उसने
छाप करके योजना, प्रायोजना, सयोजना
अखबारका भारी पुलिंदा
सामने लटका दिया है।[2]

'दानवोका शाप'[3] कवितामे भी कविने वैसे ही क्रातिकारी भाव प्रस्तुत किये हैं। भारतके स्वातत्र्य सग्रामको कविने सागर मथनसे तुलनात्मक रूपमे रखा है और स्वातत्र्यको अमृतके रूपमे। पिछले सागर मथनमे दानवोके पल्ले पडी थी शराबपर उनके शापके कारण अबकी देवताओको सुधासे वचित रहना पडा। केतु राक्षसने सुधापान कर अपना सर कटवाया और आज बापूजीने सुधाकी दो बूँदें ही न पी थी कि उस देवताको दानवोने बलि चढा दिया और सुधापर टूट पडे —

यह विगत सघर्ष भी तो
सिंधु मथनकी तरह था।
जानता मैं हूँ कि तुमने भार ढोया,
कष्ट झेला
आपदाएँ सहीं
कितना जहर घूटा!
पर तुम्हारा हाथ छूछा!
देवता जो एक दो बूँदें अमृतकी

---

१ त्रिभगिमा–पृष्ठ २३०–२३१
२ वही–पृष्ठ २३१
३ वही–पृष्ठ २३२–२३८

पान करनेको, पिलानेको चला था,
बलि हुआ !
लेकिन जिन्होंने
शोर आगेसे मचाया,
पूंछ पीछेसे हिलाई,
वही खीस-निपोर,
काम-छिछोर दानव,
सिधुके सब रत्न धनको
आज खुलकर भोगते हैं। [1]

गाधीवाद और कवि

हम जानते है कि वर्तमान युगमे कोई भी महान् साहित्यकार गाधीवादसे, गाधीके सिद्धातोंसे प्रभावित हुए विना नही रहा है। हमारे कविने भी स्वातत्र्य-सग्राममें भाग लेनेके हेतु अपनी एम. ए. की पढाईको बीचमे ठोकर मार दी थी, अत स्वातन्त्र्य-संग्राममे भाग लेनेकी वजहसे वह सीधे गाँधीवादसे प्रभावित हुआ ही है। अब हम उनकी रचनामे उन तत्त्वोका अवलोकन करेगे। 'सूतकी माला' एवं 'खादीके फूल' तो गाधीजीको ही कविकी चढाई गयी श्रद्धाजलि है। वे दोनो रचनाएँ गाधी-दर्शनका विस्तृत चित्र अकित करती हैं। गाधीजीके गुणगान द्वारा कविने गाधी-दर्शनको मुखर कर दिया है। वास्तवमे दर्शन-फिलासफी वह महान् होती है जो प्रत्यक्ष सदेश देती हो, दिखायी देती हो न कि केवल उसका कथन भर होता रहे। गाधीजीके प्रधान गुण थे—सत्य, अहिंसा, प्रेम, मानवता, आत्मविश्वास, अटलता, त्याग, सेवा, वीरता, राष्ट्रप्रेम. विश्वबधुत्वकी भावना, तपस्या, साधना आदि। आज स्थान-स्थानपर गाधी-स्मारक स्थापित किये जा रहे हैं, उनकी मूर्तियों, चित्रोंकी पूजा-सी चल पडी है। हमारा कवि तो चाहता है कि अगर हम उस आगको प्रज्ज्वलित रख सके होते—

---

१. त्रिभगिमा–पृष्ठ २१७–१८

है हमको उनकी यादगार बनवानी,
सैकड़ों सुझावे देंगे पंडित-ज्ञानी,
लेकिन यदि हम यह ज्वाल जगाये रखते,
होती उनकी
सबसे उपयुक्त
निशानी। [१]

और भी देखिए, हमारा कवि उनकी कायाको सुरक्षित रखनेकी अपेक्षा उनके सिद्धांतोंको सुरक्षित रखनेकी भावनाको ही अधिक श्रेयस्कर मानता रहा है। हमारे कविने गीताके ज्ञानकी बात करते हुए शरीर-मोह त्याग एवं आत्माके संबंधपर उसकी अमरतापर बल दिया है –

आत्माकी अजर-अमरताके हम विश्वासी,
कायाको हमने जीर्ण वसन बस माना है,
इस महामोहकी वेलामें भी क्या हमको
वाजिब अपनी
गीताका ज्ञान
भुलाना है ?

* * *

रक्षा करनेकी वस्तु नहीं उनकी काया
उनके विचार संचित करनेकी चीजें हैं,
उनको भी मत जिल्दोंमें करके बंद धरो,
उनको जन-जन
मन-मन, कण-कण-
में बिखराओ। [२]

गांधीजी शहीद थे। उन्हें रणभूमिमेंसे किसीने भागते नहीं देखा। वे तो महान् वीर थे। वीरोंके कफन निराले होते हैं, चिताएँ निराली होती हैं, हमारा कवि कहता है —

१ सूतकी माला-पृष्ठ १४६
२ वही—पृ ९०-९१

मत यह लोहूसे भीगे वस्त्र उतारो,
मत मर्द सिपाहीका श्रृंगार बिगाडो,
इस गर्व-खून पर चोवा चंदन वारो,
मानव पीडा प्रतिबिंबित ऐसोंका मुंह
भगवान स्वयं
अपने हाथोंसे
धोता।[1]

हमारा कवि चाहता है कि अगर हम जीते जी बापूके पथके अनुगामी न बन सके तो कम-से-कम उनकी मृत्युसे तो सबक सीखें। अब तो हम शस्त्रास्त्रोको जलाकर भस्मीभूत कर दें, अतः उनसे ही क्यो न बापूकी चिता चुनी जाए? अगर आज भी गाधीजीके बलिदान-के पश्चात् भी फिरकेवारी--साप्रदायिकता जीवित रह गयी तो वह कुर्बानी व्यर्थ गयी ऐसा मानना पडेगा—

लाओ ये फरसे, बरछे, बल्लम, भाले,
जो निर्दोषोंके लोहूसे हैं काले,
लाओ ये सब हथियार, छुरे, तलवारें,
जिनसे बेकस मासूम औरतों, बच्चों,
मर्दोंके तुमने लाखों शीश उतारे
लाओ बदूके जिनसे गिरें हजारों,
तब फिर दुखात, दुर्दांत महाभारतके,
इस भीष्म पितामहकी हम चिता बनाएँ।
जिससे तुमने घर-घरमें आग लगायी,
जिससे तुमने नगरोंकी पांत जलायी,
लाओ वह लूकी सत्यानाशी, घाती,
तब हम अपने बापूकी चिता जलाएँ।
ये जलें, बनी रह जाए फिरके बदी,
ये जलें, मगर हो आगन उसकी मदी,

---

१. सूतकी माला— पृ ९३

तो तुम सब जाओ अपनेको धिक्कारो
गांधीजीने बेमतलब प्राण गवाये ।[१]

गाधीजी भारत भरके ही नही, विश्वके ज्योतिमय दीप थे पर आज उस दीपका निर्वाण हो गया है । हमारा कवि उनके बडप्पन के पीछे उनके व्यापक प्रेमको पाता है —

स्नेहमें डूब हुए हो तो हिफाजतसे पहुंचते पार,
स्नेहमें जलते हुए ही कर सके हैं ज्योति-जीवनदान ।[२]

और जो अपने प्राणोमे यह आग सुलगाता है वह साम्यवादी बन जाता है उसके पास भेद भावके लिए स्थान ही नही रह जाता —

चांद-सूरजसे प्रकाशित एक-से है झोंपडी प्रासाद
एक-सी सबको विभा देते जलाते जो कि अपने प्राण ।[३]

गाधीजीका गौरव तो स्वर्गको भी शर्मिदा करनेवाला है। स्वर्ग इस बातपर गर्व न करता रहे कि उसने ही मानव कल्याण हेतु अवतार धारण करनेवाले देवता दिये । हमारे कविने गाधीजीसे मानवताका उज्ज्वल बताया है —

गौरवसे अंकित हों नभके लेख
क्या लिये देवताओन ही यशके ठेके
अवतार स्वर्गका हो पृथ्वीने जाना है
पृथ्वीका अभ्युत्थान स्वर्ग भी तो देखे ।[४]

देश भक्ति

देश भक्तिकी भावना केवल गाधी-युगकी भावना नहीं भले ही वह गाधी-युगकी प्रधान भावना रही हो । यह भावना किसी भी स्वाभिमानी देशके लिए अपना विशेष महत्त्व रखती है और इसका परिचय हम भारतमे भी इतिहास ग्रथोमे पुरातन कालसे पाते आ

---

१ सूतकी माला-पृ १०७
२ सोपान (खादीके फूल)-पृष्ठ २५४
३ वही-पृष्ठ २५५
४ वही-पृष्ठ २६२

रहे हैं। देशभक्तिके लिए तीन बातोंकी ओर विशेष ध्यान देना पडता है– भूमि, भूमिपर बसनेवाला जन और जनकी संस्कृति। देशकी सुरक्षा देशकी एकतापर अवलबित है और देशकी एकताके लिए देशवासियोका आपसमे बधुत्व भाव होना भी अनिवार्य है। इसलिए जातीयता, ऊँच-नीचका भेदभाव, छुआछूतकी भावनाका नष्ट होना अनिवार्य है। आपसी झगडोंमे उलझे रहकर हम देशको सुरक्षित नही रख सकते और न ही देशका विकास ही ऐसी अवस्थामे सभव है। हमारे कविने छुआछूतकी भावना तथा विभेदकी भावनाको देशके विकासमे घातक माना है। स्वय गाधीजी छुआछूतके कट्टर विरोधी थे। वे *मनुष्य-मनुष्यमे किसी तरहका* भेद-भाव रखना अनुचित ही नही हानिकारक भी मानते थे। हिंदू-मुस्लमानोके झगडेके वे कट्टर विरोधी एव एकताके पक्षपाती थे। उनकी इन भावनाओंके साथ अमीर गरीबके भेद-भावपर भी हमारे कविने " आजादीके बाद " कवितामे प्रकाश डाला है —

अगर विभेद ऊँच नीचका रहा,
अछूत-छूत भेद जातिने सहा,

किया मनुष्य औ' मनुष्यमें फरक
स्वदेशकी कटी नहीं कुहेलिका।

अगर चला फसाद शख गायका,
फसाद सप्रदाय सप्रदायका,

उलट न हम अभी सके नया वरक,
चढी अभी स्वदेशपर पिशाचिका।

अगर अमीर वित्तमें गडे रहे,
अगर गरीब कीचमें पडे रहे,

हटा न दूर हम सके अभी नरक,
स्वदेशकी स्वतत्रता मरीचिका। [१]

---

१. धारके इधर-उधर–पृष्ठ ७९

राष्ट्रीय एकतामें भाषा कितना महत्व रखती है आज इसके बतानेकी आवश्यकता नही रही। हम जानते हैं कि देशको एकसूत्रता-मे बाँधे रखनेके लिए एक भाषाका होना अनिवार्य है। देशकी उन्नतिके लिए भी एक भाषाका होना एव भाषाका विकास अनिवार्य बात है, इस बातको एक युगसे अनुभव किया जाने लगा है।

भारतेन्दु बाबूने तो कहा ही था कि "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नतिको मूल, बिन निज भाषा ज्ञानके मिटै न हियको सूल।" किंतु हमारे गाधीजी भी हिंदीके बड़े समर्थक रहे हैं। हमारे कविने भी हिंदी भाषाके विषयमे अपने विचार प्रस्तुत किये हैं —

कि जो समस्त जातिकी उभार हो
कि जो समस्त जातिकी पुकार हो,
कि जो समस्त जाति-कठहार हो,
स्वदेशको जबान एक चाहिए। [१]

आज हम स्वतत्र हो गये हैं। गाधीजीकी स्वराज्यके बारेमे सुराज-की कल्पना थी। कविके शब्दोंमे—

विदेश आधिपत्य देशसे हटा,
कलक भाल पर लगा हुआ कटा,
स्वराज्यकी नहीं छिपी हुई छटा
मगर सुराजमें अभी विलब है। [२]

देश *अपनी सस्कृतिपर ही जीवित रहता है। जिस देशकी सस्कृति* मिट जाती है वह देश भी नष्ट प्राय हो जाता है। आज तक अनेक कवि कलाविदोंने अपनी सस्कृतिके गान गाये हैं। स्व बाबू जयशकर प्रसादजी तकको इस सस्कृति गानके *कारण* प्रेमचदजी *द्वारा गड़-*मुर्दे उखाडनेवालेकी उपाधिसे विभूषित होना पडा था। फिर भी आज तक इस बातका महत्व उसी रूपमे बना हुआ है कि देशको जीवित रखनेके लिए उसके समक्ष उसकी सस्कृतिका गान आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। सस्कृतिकी ओर उन्मुख देशको कोई मिटा

---

१ धारके इधर उधर–पृष्ठ ६४
२ वही–पृष्ठ ६५

नही सकता । जो देश अपनी सस्कृतिसे भूला रहता है, मह देश, देश कहलानेका अधिकारी नही । सस्कृतिकी ओर उन्मुख करनेके लिए कविजन पुरातन इतिहासको दुहराते ही है । इस दिशामे कवि-वर मैथिलीशरणजी गुप्तका कार्य अत्यत वदनीय एव महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है । पर इस तरह भी देशको जगते न देखकर हमारे कविने एक और अधिक उपयोगी शस्त्रका प्रयोग किया । वह था उनके आराध्य कवि खैयामका व्यग्योक्तियोका शस्त्र जिसके कारण खैयामकी तरह हमारा कवि भी बदनामीसे नही बचा । उनकी रचनामे भी कबीरकी भाँति सत्यका चुभता दर्शन मौजूद है । हमारा कवि है जो अपने आघातोंको भूला-सा देशवासियोपर चोटपर चोट किये जा रहा है कि सभवत देश इस तरह जग सके, अपनी भूली बिसरी सस्कृतिको पहचानकर अपना महत्त्व पुन प्राप्त कर सके ।

हमारे बापू भारतीय सस्कृतिके जीवित चित्र थे, उनमे भारतीय सस्कृति जीवित थी । हमारे कविको भारतीय सस्कृतिके प्रति असीम श्रद्धा है । हमारा उज्ज्वल अतीत किसी भी देशके समक्ष हमारा सर ऊँचा करनेके लिए यथेष्ट है । किसी भी देशको जाननेके लिए उसकी सस्कृतिसे परिचित होना अनिवार्य है और सस्कृतिका परिचय साहित्यसे मिलता है । हमारे कविने इग्लैंडमे अनुभव किया कि किस तरह दो सौ वर्ष भारतपर राज्य करके भी अँग्रेज भारतीय सस्कृतिसे अपरिचित हैं । आज वहाँ पहुँच है हमारे खिलाडियोकी, हमारे भारत-का गर्वसे सर ऊँचा करनेवाले उन महान पुरुषोकी नही —

हमें होता है अभिमान,
पर अजीब-सी लगती है बात
कि बूढे भारतपर बीसवीं सदीका व्यग,
कि जहाँ हुए वशिष्ट और व्यास,
पातजलि और वाल्मीकि,
जयदेव और कालिदास,
शकर और बुद्ध भगवान्,
महावीर और गौराग,
गौतम और कणाद,

उनके प्रतिनिधि हैं आज
रंजीट, डफूलिप और मनकाढ[1]

हमारा कवि भारतके पूरे इतिहासको दुहराकर अँग्रेजोको ही नहीं कुछ भारतीयोंको भी जो शायद पाश्चात्य रगमें आज भी अपने देश-के इतिहास एव सस्कृतिसे अपरिचित हैं, अपनी महानता पहचाननेकी ओर इंगित करता है।

परम पुरातन है हमारा देश
अज्ञात अतीतमें है
हमारी सस्कृतिका मूल
कला सगीत, साहित्य
न जाने कितनी बार,
नये नये रूप धार,
उभरे है बढे हैं
परवान चढे हैं
कि उन्हें इतिहास भी गया है भूल।[२]

और यह बात तो माननी ही पडगी कि किसीको जाननेके लिए उसकी परपरा उसके दर्शन विचारको परखना जानना अनिवार्य है—

वह जानगा तुम्हे खाक
जो जाने न तुम्हारी परम्परा,
तुम्हारा दर्शन तुम्हारा विचार।[3]

तुम्हारी नजरोमे वे, उनकी नजरोमे तुम[४] दस पृष्ठोकी लबी चौडी कविता है जिसमे हमारे कविने भारतीय सस्कृतिके साथ अँग्रेजी सस्कृतिको भी प्रस्तुत किया है और उसमें कविका कठोर व्यग बार-बार उमड पडा है।

---

१ बुद्ध और नाचघर-पृ ६८
२ वही-पृ ७१
३ वही-पृ. ७२
४ वही-पृ ६५-७४

' मिट्टीका द्रोणाचार्य ' कवितामें हमारे कविने छुआछूतकी भावना-पर प्रकाश डालते हुए तथाकथित उच्च वर्गोके अधिष्ठाता द्रोणाचार्य-को भील कुमारके सामने कोई भी हेय ही कहेगा पर हमारी नस-नसमें किस तरह यह छुआछूत, ऊंच-नीचकी भावना धर्मके द्वारा बीज रूपमें आदि कालसे सचरित होती रही है, इसका भी परिचय द्रोणाचार्य एवं एकलव्यकी कथासे मिल जाता है। और हमारे कविने यह बता दिया है कि द्रोणाचार्यकी मिट्टीकी मूर्ति अधिक सशक्त थी क्योंकि उसके पीछे एकलव्यकी एकनिष्ठ भक्ति, असीम श्रद्धा थी और द्रोणाचार्यकी तरह उसमें दभ नही था, वह सबके लिए सुलभ है। द्रोणाचार्यको अपनी ही मिट्टीकी मूर्तिसे पराजित होकर लौटना पडा था—

उस दिन गुरु द्रोण
अपनी मृत्तिकाकी मूर्तिसे
होकर पराजित हो फिरे थे। [1]

जब तक हम अपनी भूमिसे परिचित नही हो पाते, हम उससे पूर्ण रूपमें प्रेम भी नही कर पाते। जिस भूमिसे हमारा प्रेम है, उसके अहितकी हम कल्पना भी नही कर सकते। कोई उसकी ओर आँख उठाये तो हम उसकी आँख निकाल दें, कोई उसकी ओर उगली उठाए तो हम उसकी उगली काट दें। देशकी रक्षाके लिए हमे उसके लिए प्राणार्पण करनेके लिए कटि-बद्ध रहना चाहिये। हमारा कवि भले ही गाधी-दर्शनसे प्रभावित रहा हो पर उन्हे ऐसे अवसर पर महाभारतके कृष्णका रूप ही अधिक प्रिय है जो लडने-मरनेका सदेश देता है।

आज हम नित्य समाचार-पत्रोमे पढते हैं कि चीन भारतके उत्तरी भागसे धीरे-धीरे प्रवेश करता भारत-भूमिको हडपनेका प्रयत्न करता दिखायी देता है। हमारे कविने इस बातको भी अपनी रचनामें कितना सबल बना लिया है यह तो रचना पढकर ही जाना जा सकता है। इस ' चेतावनी ' में न मात्र चीनको चेतावनी दी गयी है अपितु

१. त्रिभगिमा—पृ. १८६

भारतके समस्त महाभारतका उदाहरण रखते हुए कविने बताया है कि यहाँ जब कोई अत्याचारी हमारी रमणीके बाल नोचता है, अनाचार करता है तो महाभारत मचता है और तुम किसी साधारण स्त्रीके बाल नहीं, चालीस करोड पुत्रोंकी माँ भारतमाताके बाल नोचकर बच न सकोगे। इससे यह भी ध्वनित होता है कि हमारा कवि अपने देशके युवका भीमार्जुनको ललकारकर समरमे उतरनेके लिए प्रेरित करता हुआ यह विश्वास दिलाता है कि महाभारतमे धर्मकी ही जय हुई थी और हम धर्मसे विचलित नहीं। कविने भारतकी परपराके परिचयमे चेतावनीका आरभ किया है—

> भारतकी यह परम्परा है—
> जब नारीके बालोंको खींचा जाता है,—
> धर्मराजका सिहासन डोला करता है,
> क्रुद्ध भीमकी भुजा फडकती,
> वज्रघोष, मणिपुष्पक औ' सुघोष करते हैं
> गाडीवकी प्रत्यचा तडपा करती है
> कहनेका तात्पर्य,
> महाभारत होता है। [१]

युद्धके अवसरपर प्राणोका मोह कभी-कभी व्यक्तिको कर्तव्य विमुख कर देता है यह बात कविसे छिपी नहीं। उसे महाभारतमे अर्जुनके मोहका स्मरण है पर इसस वह निराश नहीं, उल्टे उसे यह भी आशा जगती है कि अर्जुनके मोहके कारण ही तो भगवान् कृष्णने गीताका ज्ञान दिया अन्यथा गीता क्योकर अस्तित्वमे आती—

> अगर कभी झूठी ममता
> दुर्बलता किंकर्तव्य विमूढता
> व्यापा करती,
> स्वय कृष्ण भगवान प्रकट हो
> असदिग्ध औ' स्वत सिद्ध

---

१ त्रिभगिमा-पृ १७८

स्वरमें कहते,
'युध्यस्व भारत'। [1]

गाधीवादको अपनाकर भी हमारे कविकी अहिंसाके प्रति आस्था नही, वह तो हिंसामे विश्वास रखता है। इसका ज्वलत उदाहरण 'बगालका काल' प्रस्तुत करता है जहाँपर कवि सतोपको घातक मानता है, जहाँ कवि ईश्वरका भरोसा एव बल, बल न मानकर भुज-बलको ही बल स्वीकारता है —

मनसे अब सतोष हटाओ,
असतोषका नाव उठाओ,
करो क्रातिका नारा ऊँचा,
भूखो, अपनी भूख बढाओ,
और भूखकी ताकत समझो,
हिम्मत समझो,
जुर्रत समझो,
कूवत समझो,
देखो कौन तुम्हारे आगे
नहीं झुका देता सिर अपना। [2]

और

क्योंकि सिखाया, क्योंकि पढाया,
क्योंकि रटाया, तुम्हें गया है।
'निर्बलके बल राम'!'
(हाय किसीने क्यों न सुझाया
निर्बलके बल राम नहीं,
निर्बलके बल है दो घूसे!) [3]

---

१. त्रिभगिमा–पृ १७८
२. बगालका काल–पृष्ठ ४६-४७.
३. वही–पृष्ठ ४०-४१

'बंगालका काल' में आरंभसे लेकर अंत तक अहिंसाके प्रति कविका आक्रोश एवं हिंसाके प्रति आग्रह स्पष्ट झलकता दिखायी देता है। कवि तो कह ही उठता है —

आत्मरक्षाके लिए
लड़ना कभी अनुचित नहीं है,
और प्रियजनकी सुरक्षाके लिए
कर्तव्य लड़ना,
किंतु अपने नामकी
लज्जा बचानेके लिए है
धर्म लड़ना।
नाम पर जो
दाग लगता है
कभी धुलता नहीं है।
शत्रु तेरा
आज तेरे नाम पर
यदि वार करता
तो तुझे ललकारता मैं —
चल उठा तलवार
औ' स्वीकार कर उसकी चुनौती।
न्याय विक्रम और मनकी शक्तिका
जो फैसला हो वह मुझे मंजूर होने दे।[1]

और हमारा कवि तो वीर-रसोत्पादक भावक है जो एक महान् गुण है। इससे देशमें वीरताके बीज पनपने लगते हैं और मनुष्यता वीरतारहित नहीं होती —

---

१ युद्ध और गाधपर—पृष्ठ १२

मैं उसी रनबीरका
गुण-गान करता हूँ
कि जिसके
घाव सीन पर लगे हों। [1]

कविका साहित्यके बारेमें दृष्टिकोण

मानव ही साहित्यका लक्ष्य

मनुष्य ही साहित्यका अतिम लक्ष्य या एकमात्र लक्ष्य है। उससे हटकर साहित्यका कोई मूल्य नही रह जाता। साहित्य-कला अपूर्ण जीवनको पूर्ण बनानेका माध्यम ही है। हमारे कविने भी कलाके लिए कलावाले सिद्धातका कही समर्थन नही किया। हमारे कविने मानव-जीवनको अपनी कविताका केंद्र एव लक्ष्य बनानेवाले समस्त सरस्वती पुत्रो (विशेष रूपसे वाल्मीकि, कालिदास, जयदेव, जगन्नाथ, चद्र विद्यापति, कबीर, तुलसी, जायसी, सूर, मीराँ, रहीम, भारतेदुबाबू, मैथिलीशरण गुप्त, खैयाम, मीर गालिब, इकबाल, रवीद्रनाथ ठाकुर एव अँग्रेज कवि ईट्स) की प्रशसाके गीत गाये हैं, उनके काव्यकी शक्तिकी महिमा बखान की है और उनके मार्गको आदर्श बताया है। आयरलैडके कवि ईट्सपर लिखते हुए हमारे कविने उन दिनो वहाँके प्रचलित 'कलाके लिए कला' के सिद्धातके बारेमें ईट्स द्वारा ही अपने विचारोका समर्थन इस रूपमें किया है —

कठ तुम्हारा फूटा था जब
गिरा हो रही थी जर्जर स्वर,
कला-कलाके हेतु हुई थी
जन-मन सघर्षोंसे बचकर,
भूषा-वेश विचित्र किये कवि
अपनी छाया पिछुआते थे।

---

1. बुद्ध और नाचघर-पृष्ठ ९३

अपने मूक देशको मुखरित करनेकी तुमने पर, ठानी ।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयरके शायर अभिमानी । [१]

और हमारे कविने स्पष्ट शब्दोंमें भी अपने मानवकी ओर लक्ष्यको व्यक्त किया है :-

आँख मेरी आज भी मानव—
नयनकी गूढ तर तह तक उतरती,
आज भी अन्याय पर
अंगार बनती; अश्रुधारामें उमडती
जिस जगह इन्सानकी
इन्सानियत लाचार उसे कर गयी है।
तुम नहीं गर देखते तो
मैं तुम्हारी आँखपर अचरज करूँगा । [२]

और मनुष्यको जगाये रखनेके लिए अपने इतिहास एवं संस्कृतिसे सबल ग्रहण करना पडता है, इसलिए हमारा कवि अपनेको इतिहास एवं संस्कृतिको अपने गीतोंमें, हर साँसमें मुखरित रखनेकी बात करता है :-

और क्या इतिहास क्या संस्कृति,
कि जीवनमें मनुज विश्वास रखे,
मैं इसी विश्वासको हर
साँससे कहता रहा कहता रहूँगा । [3]

साहित्यका यह पक्ष, यह लक्ष्य उसके शिव पक्षके अंतर्गत भी आता है । उसे मैं बादमें प्रस्तुत करूँगा । यहाँपर मुझे दो और पक्ष रखने हैं । एक, आजका मानव, दूसरा, कविके स्वप्न लोकका, कल्पनाका मानव ।

१. आरती और अंगारे—पृष्ठ ७४-७५.
२. वही—पृष्ठ २४०
३. वही—पृष्ठ २४१..

आजके मानवका हमारे कविने अत्यत ही सजीव चित्र अपनी रचनाओमे प्रस्तुत किया है। हम उनकी रचनाओमेसे दो-चार उदाहरण देखेंगे। 'बुद्ध और नाचघर' कवितामे भी हमारे कविने मानव स्वभावपर विशेष और विस्तृत प्रकाश डाला है। कविने इस कवितामे भगवान् बुद्धके सिद्धातोका परिचय देते हुए यह सिद्ध किया है कि मानवने उस सदेशको कितने गलत अर्थमे ग्रहण किया है। भगवान् बुद्ध मूर्ति-पूजाके विरोधी थे पर लोगोंने उनकी ही मूर्तियाँ बनाकर उनकी पूजा आरभ की। भगवान् बुद्ध बाह्य वेशभूषाके विरोधी थे, साज सज्जा, श्रृगारके विरोधी थे, पर कलाकारोंने उनके सरको भी सुदर घुंघराले केशोसे सज्जित कर लिया। इतना ही नही, आज तो भगवान् बुद्धकी मूर्तियाँ ड्राइगरूमकी शोभा बढानेवाली मानी जाने लगी है। अत उनका क्रय विक्रय आरभ कर लिया गया है और आज ऐसी दूकानें मुश्किल ही होगी जहाँ भगवान् बुद्ध न बिकते हो। भला जहाँ भगवानकी ही दाल नही गली वहाँ मानव भगवान् बुद्धकी दाल क्या गलने देता। मानवने भगवानकी सर्वव्यापकतापर नियत्रण रख लिया है, उसे मदिरो-मस्जिदो गिरजाघरोमे बद कर रखा है और उसके खुलनेके भी समय रखे है और उसकी पूजाके लिए मानवका दो-चार बार वहाँ जाना क्या भगवानपर कम एहसान है? और अगर भगवान सर्वव्यापक होते तो मनुष्य कोई भी काम निडर होकर न कर सकता, निस्सकोच न कर सकता। वह अपनी पत्नीसे प्रेम तक न कर सकता। देखिए कविताका व्यग बडा ही दृष्टव्य है —

इसने समझ लिया था पहले ही
खुदा साबित होंगे खतरनाक,
अल्लाह थवाले जान, फजीहत,
अगर वे रहेंगे मौजूद
हर जगह हर वक्त।

* *

बद हो जाएगा दुनियाका सब काम।
सोचो,

कि अगर अपनी प्रेयसीसे करते हो तुम प्रेमालाप
और पहुंच जाएँ तुम्हारे अब्बाजान,
तब क्या होगा तुम्हारा हाल ?
तबीयत पड़ जाएगी ढीली,
नशा सब हो जाएगा काफूर,
एक दूसरेसे हटकर दूर
देखोगे न एक दूसरेका मुंह ?
मानवताका बुरा होता हाल
अगर ईश्वर डटा रहता सब जगह, सब काल।
इसने बनवाकर मंदिर, मस्जिद गिरिजाघर,
खुदाको कर दिया है बंद,
ये हैं खुदाके जेल,
जिन्हें यह - देखो तो इसका व्यंग---
कहता है श्रद्धा पूजाके स्थान !

* *

जहाँ खुदाकी नहीं गली दाल,
वहाँ बुद्धकी क्या चलती चाल,
वे थे मूर्तिके खिलाफ,
इसने उन्हींकी बनायी मूर्ति
वे थे पूजाके विरुद्ध,
इसने उन्हींको दिया पूज,
उन्हें ईश्वरमें था अविश्वास,
इसने उन्हींको कह दिया भगवान,
वे आये थे फैलानेको वैराग्य
मिटानेको सिंगार पटार,
इसने उन्हींको बना दिया श्रृंगार।

* *

बना दिया उन्हें बाजारमें बिकनेका सामान। [१]

---

१ बुद्ध और नाचघर-- पृष्ठ १७२-१७४

पर यह सब स्वाभाविक है। हमारे कविने मानव-स्वभावकी विशेषतासे इसका बडा मेल बताया है क्योंकि वह,

सुननेको नयी बात हमेशा रहता है तैयार इन्सान
कहनेवाला भले ही हो शैतान।"[1]

और यह स्वाभाविक बात है कि हर नयी बात पहले-पहले तेजीसे चल पडती है, पर धीरे-धीरे इन्सान उसकी असलियत जानकर उससे मुँह मोड लेता है, मानो वह अनजानी वस्तुओ और सिद्धांतोको ही अपनानेमे अभिरुचि रखता हो

कुछ दिन चलता है तेज हर नया प्रवाह,
मनुष्य उठा चौंक, हो गया आगाह।[2]

और फिर जहाँ भगवान बुद्धकी मूर्ति विराजमान है, वहाँ आज ध्वनि कुछ अजीब भी सुनायी पड रही है –

मद्य शरणं गच्छामि
मांस शरणं गच्छामि,
दास शरणं गच्छामि।[3]

मनुष्य ही सोचने लगता है कि मनुष्य कितना विकृत हो गया है! आजका मानव निर्माणके अर्थको ही नही समझ पाया। वह निर्माणके लिए सर्वप्रथम विध्वंस विनाशको शायद अत्यावश्यक समझ बैठा है। वह अपनी पिछली भूलोको न सुधारकर भूलोको अभ्यासगत दुहराता रहता है –

सहसा मेरी आँखोंके आगे नाच गये–
पटना, काशीके और अयोध्याके मंदिर–
कुछ अर्धभग्न पिछली करतूतोंके साखी,
कुछ कुगढ मसजिदों-मीनारोंमें परिवर्तित।
निर्माण माँगता है मौलिक उद्‌भाव स्वप्न,

---

१. बुद्ध और नाचघर– पृष्ठ १६९
२. वही– पृष्ठ १७१
३. वही– पृष्ठ १७६

यह तोड जोड करनेसे सिद्ध नहीं होता ।
मानवता कितने गलत पथोंसे जाती है ।
बीती सदियोंकी भूलोंके टीले, गड्डे,
क्या नहीं बचाए या कि भरे जा सकते थे । [१]

हमारा कवि महसूस करने लगा है कि आजके मानवकी आस्थाएँ, विश्वास नष्ट हो चुके हैं, आजकी मनुष्यता कुठित पराजित हो गयी है—

मनुजता
कुंठित पराजित हो रही है,
आस्थाएँ टूटतीं,
विश्वासका दम घुट रहा है । [२]

हमारे कविने ईसा और गाधीजीको मानवताका शिक्षक ही माना है। दोनोंने अपने प्राणोंकी बलि चढाकर मानवको सदेश दिया है। भगवान ईसाने मानो अपने प्राणार्पणसे यह सिद्ध किया कि जब तक मानवताका लहू न बहेगा और पृथ्वी रक्त स्नान नहीं करेगी, मानवता पनप नहीं सकेगी —

समवेदना अश्रु ही केवल
आन पडेंगे वर्षाका जल,
जब मानवता निज लोहूका सागर दान करेगी ।
पृथ्वी रक्त स्नान करेगी । [३]

महात्मा गाधीने अपकारके बदले उपकार करनेका सदेश दिया और इसीमे मानवताकी महानता बतायी और अपने रक्तसे दुनियामें फैली घृणाको मिटानेका प्रयत्न किया —

घृणा मिटानेको दुनियासे लिखा लहूसे जिसने अपने,
जो कि तुम्हारे हित विष घोले, तुम उसके हित अमृत घोलो । [४]

---

१ त्रिभगिमा— पृष्ठ १९३
२ वही— पृष्ठ २४१
३ धारके इधर-उधर— पृष्ठ १४
४ वही— पृष्ठ ९७

मानवताके लिए उदारता चाहिए क्योंकि दान देनेमें बड़ा कलेजा चाहिए, फिर अपने प्राणोंका दान देनेकी बात तो और ही बड़े कलेजे-की बात है, दूसरोंके अपराधोंके प्रति सदय रहना भी उदारताका महत्त्वपूर्ण अंग है। आजका मानव परछिद्रान्वेषी बना हुआ है। हमारा कवि उसमे देवत्वकी आभा लाना चाहता है। वह चाहता है कि मानव मानवके प्रति सदय रहे, उसकी कमजोरियोंके कारण उससे घृणा न कर उस पर दया करना सीखे, वह दूसरोंका सम्मान करना सीखे। इसीमे मानवका देवत्व है :–

अपनेमें क्या है जो तुम करो किसीको दान!
बहुत बड़ा कलेजा चाहिए
किसीका करनेको सम्मान,
और किसीकी कमजोरियोंका आदर—
यह है फरिश्तोंके बूतेकी बात,
देवताओंका काम।[1]

निस्सदेह किसीका आदर करनेके लिए उदारता चाहिए, बड़ा कलेजा चाहिए, दूसरोका सम्मान करनेमे कुछ लोग अपनी हेठी समझते हैं पर वास्तवमे दूसरेको आदर सम्मान देनेवाला स्वय आदर सम्मानका पात्र बन जाता है। ये तो किसी वीरके ही गुण हो सकते हैं और वीरता भी तो मानवका अनिवार्य गुण है। वीर कायरके आघातोंसे मर नही सकता—

कायरके प्रहारोंसे
कभी कोई नहीं मरता।
जानकर अनजान बनना
भी नहीं कम वीरता है,
धीरता है।
वीर है वह
घाव जो आगे लिये हो दुश्मनोंके,
और पीछे दोस्तोंके।"[2]

१. बुद्ध और नाचघर– पृष्ठ १०५
२. वही– पृष्ठ ९४

मानव मानव सब समान हैं। जहाँ भेदभाव आया वहाँ मानवता है ही कहाँ ? हमे तो चाहिए कि मनुष्य मात्रके लिए प्रेममय भूमि एव प्रेममय आसमान बना सके—

बेकार है तुम्हारा होना हिंदू,
बेकार है तुम्हारा होना मुसलमान,
अगर न रह सके तुम इन्सान,
अगर न रख सके तुम इन्सानका स्वाभिमान,
अगर न रच सके तुम इन्सानके लिए
सुखकी जमीन,
स्नेहका आसमान।[१]

जनसेवा ही सच्ची ईशसेवा माननेवाले व्यक्ति तो पिंडमे ब्रह्माण्ड देखते है और प्रत्यक व्यक्तिके मन-मदिरको ही उसका वास्तविक अधिवास मानकर किसीके मनको नही दुखाते। हमारा कवि तो यहाँ तक कहता है कि अगर कोई व्यक्ति इन्सानसे अपरिचित रहकर भगवानको पहचाननेका दावा रखता है तो यह बड़ा भारी झूठ ही है, असमव है —

जो नहीं इन्सानको पहचानता
भगवानको पहचानता है ?[२]

हमारा कवि तो अपने पूर्वज उन कवियोके अपराधका प्रायश्चित्त करना चाहता है जिन्होने मानवसे अपरिचित रहकर भगवानको जाननेका दावा किया है। यह भी सभव है कि हमारा कवि यह मानता हो कि वह भी पूर्वजन्ममे कवि रहा होगा। और कही वही ऐसा अपराध कर बैठा हो। आज वह मानवको अपनी कविताका लक्ष्य बनाकर उस अपराधको धोना चाहता है —

मानवोंका दुख,'सुख बल, भीति जाने,
प्रीति जाने, मुँह न खोले,

---

१. बुद्ध और नाचघर-पृष्ठ ४६
२. आरती और अंगारे-पृष्ठ १४०.

मैं किसी युगमें किये अपराधका अब दंड भरना चाहता हूँ।
मैं प्रकृति-प्राकृत जनोंका मान औ' गुणगान करना चाहता हूँ। [1]

भगवानकी ओर अधिक आस्था एव आकर्षण मनुष्यका आत्मविश्वास नष्ट कर देता है। मानव परावलंबी बन जाता है। परावलंबी बनना सबसे बड़ा अपराध है। मानवकी शक्तिका अबाध विकास देवताओंके अभावमें ही संभव है। हमारे मैथिलीशरण गुप्तजीने अपनी रचना पृथ्वीपुत्रमें दिवोदासके मुखमें अपनी वाणी इन शब्दोंमें भर देता है —

कर दी है देवावलयने नरकी निजता नष्ट,
अमृतपुत्र होकर भी हम हैं पौरुष-पदसे भ्रष्ट।
किंतु आत्मविश्वासी हूँ मैं पाकर दुर्लभ देह,
सहे सुरोंका भी शासन क्यों मेरा अपना गेह। [2]

इसे हम नास्तिकता नहीं कहेंगे। ये पंक्तियाँ कर्मवादकी परिचायक हैं ताकि मनुष्य स्वावलंबी बन सकें। मैथिलीबाबूने ही आगे चलकर इस कर्मवादकी स्पष्ट घोषणा उसी काव्यमें दिवोदासके ही मुखसे करवायी है —

हम दयनीय नहीं, भागी हैं देवोंके हो साथ,
हृदय नहीं, या बुद्धि नहीं, या नहीं हमारे हाथ ? [3]

हमारा कवि भी संसारको युद्धस्थल मानते हुए मानवको भुजबल दिखानेके लिए ललकारता है, उसे कर्मपथपर चलनेका आग्रह करता है और यही घोषित करता है कि मठ, मस्जिद, गिरिजाघर मानव-पराजयके परिचायक, मानव-पराजयके स्मारक हैं:—

प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर !
युद्धस्थलमें दिखला भुजबल
रहकर अविजित, अविचल प्रतिपल,
मनुज-पराजयके स्मारक हैं मठ, मस्जिद गिरजाघर। [4]

---

१. आरती और अंगारे-पृष्ठ १४०.
२. पृथ्वीपुत्र-पृष्ठ १३-१४.
३. वही-पृष्ठ २३.
४. एकांत संगीत-पृष्ठ १०४.

इतना ही नहीं वह भगवानको चुनौती तक देनेको प्रस्तुत हो जाता है कि सहनशीलताकी भी सीमा होती है। तुम मेरी सहनशीलताका अनुचित लाभ न उठाओ; मैं भी अपनेमे कुछ शक्ति रखता हूँ:—

कहनेकी सीमा होती है,
सहनेकी सीमा होती है,
कुछ मेरे भी वशमें, मेरा कुछ सोच समझ अपमान करो।
अब मन मेरा निर्माण करो।[१]

सुख-दुख

सुख दुख मानव-जीवनके दो पहलू हैं। मानव-जीवन इनके बीचमे ही प्रवाहित होता है, ये मानो जीवन-सरिताके दो किनारे हो और लहराता जीवन कभी इस ओर कभी उस ओर टकराकर लौट पड़ता हो! हाँ, टकराकर ही क्योंकि चिर सुखसे भी वह उकता जाता है और चिर दुखसे भी, वह तो दोनोंके बीचमे ही अपनी गति पाता है।

खैयामपर आनदी जीव होनेका आरोप कुछ समीक्षकोंने किया है पर हम ऊपर देख आये हैं कि खैयामका आनंद-पक्ष इतना ही है कि व्यक्तिको कठोर एव कठिन परिस्थितियोंसे मुस्कराते हुए दो-चार होना चाहिए, उनसे घबराकर रोते बैठना भी जीवन नहीं और न ही उनसे भागकर किसी कल्पना जगतमें वास करना ही जीवन है। जीवन तो जो है, है। वह सघर्षमय है उससे भागना मृत्युके अतिरिक्त सभव नही। हमारे कवि बच्चनपर भी आनदी होनेका आरोप उनकी कल्पना सुरा, साकी, सुराही आदिके आधारपर लगाया गया है जो मेरी दृष्टिमें सर्वथा निर्मूल है।

आज व्यक्तिने सुखकी परिभाषाको इस जीवन तक ही सीमित कर दिया है हालांकि भारतीय दर्शनमे जीवन केवल यहाँ तक (ससार

१. एकांत संगीत- पृष्ठ १२.

तक) ही सीमित नही माना गया। महात्मा कबीर भी ससारकी इस भूल-भुलैयापर उसके सामने उसकी वास्तविकता रखनेको कह बैठे थे :—

> झूठे सुखको सुख कहत, मानत हैं मनमोद।
> जगत चबेना कालका कुछ मुखमें कुछ गोद॥

किंतु इससे उनका यह आशय भी कदापि नही था कि व्यक्तिको अपनी नश्वरता जानकर रोते-चिल्लाते, प्रलाप-विलाप करते अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। वे तो यही चाहते थे कि मानव अपनी स्थितिको परखकर उससे ऊपर उठे, अति मानवकी सीमाको छू ले जहाँ जरा-मरणका प्रश्न ही नहीं उठता, जहाँ भगवान् बुद्ध इस ससारकी क्षणभगुरतासे प्रेरणा पाकर पहुँचे थे। इसके लिए आवश्यकता है हृदयमे दुखकी। पर कुछ लोग तो यह मानते हैं कि "भूखे भजन न होहि गोपाला।" यह भूख है मनुष्यकी इच्छा जो किसी-न-किसी रूपमें परितृप्त होना चाहती है। पर इन इच्छाओंकी परितृप्ति क्या सभव है ? यह तो माना हुआ सत्य है कि एक आशा परितृप्त होकर दूसरीका बीजारोपण कर जाती है और मनुष्य आजीवन कभी रूपके, कभी धनके कभी पदके, कभी कुछके, कभी कुछके पीछे दौड़कर जीवन नष्ट कर देता है। हमारा कवि भी तो कहता है —

> जिस-जिस उरमें दी प्यास गयी,
> दी तृप्ति गयी उस-उस उरमें,
> मानवको ही अभिशाप मिला,
> पीकर भी दग्ध रहे छाती।[1]

व्यक्ति अगर सासारिक सुखके पीछे इच्छाओंके पीछे, भटकता रहा तो उसमें और पशुमे अतर ही क्या है ? उसके हृदयमे तो पीडा होनी चाहिए, अभाव होना चाहिए जो उसे बार-बार प्रीतमकी स्मृति दिलाता रहे जैसा कि महात्मा कबीरने कहा है —

> सुखके माथे सिल पडे, नाम हृदयसे जाय।
> बलिहारी वा दुखकी पल पल नाम रटाय।

---

१. मधुबाला– पृष्ठ ८४.

हमारा कवि भी दुख-भूखको ही भजनका अनिवार्य अग मानता है। वह उसको बाधक नही साधक मानता है। उन्हींके शब्दोंमें, " उदरकी क्षुधाको क्षुधा समझनेवाला ससार गली-गली कहता फिरता है, 'भूखे भजन न होहि गोपाला।' झूठ! भूखे रहकर ही भजन होता है। प्यासा ही गान कर सकता है। तृप्ति मौन है। तृष्णाके ही मुखमें जिव्हा है कठमे स्वर और उरमे श्वास है। मरुके कण-कणमे सजल गानके स्रोत हैं। " [१]

जीवनमे व्यक्ति दु खद स्थितिमे, कल्पनाओका जगत् बनाकर अपने दु खोसे मुक्ति पानेका प्रयास करता ही है। इसे हम जीवनसे पलायन नहीं कह सकते। ये भाव तो प्रत्येक मनमे उठते ही हैं, उठते ही रहेंगे। पर उन कल्पनाओंके महलोमे व्यक्ति कबतक विश्राम कर पाता है? जीवनकी कठिन कठोर वास्तविकताएँ तो कल्पनाओके बल-बूतेपर पिघलकर कोमल बननेवाली नही हैं और न ही व्यक्तिके प्रलापपर वे पिघलती हैं। व्यक्तिको उनसे दो चार होना ही पडता है। *वह उनसे कबतक भाग सकता है? हमारे कविने जहाँ कही कल्पनाको सुरा, सुराही, साकीके माध्यमसे अभिव्यक्त किया है वहाँ भी* उनके मनमे हलाहलाके प्रति--जीवनकी कठोर वास्तविकताके प्रति--उदासीनता नही रही है आग्रह ही रहा है। उनकी आरभिक रचनाओंमे भी इसके उदाहरण हम मिलते ही हैं। 'मधुबाला' मे हमारा कवि मधुशाला (विश्व) मे जानेकी अभिलाषा मधु-पानकी भावना (सुख भावना) से भीगी हुई बताता है पर यह भी स्वीकार करता है *कि अगर वहाँ मधु (सुख) के स्थानपर हलाहल (दु ख) मिलेगा तो क्या हम उसको अपनानेसे घबराएँग? नहीं! यही तो* जीवन है

> हम सब मधुशाला जाएँगे,
> आशा है, मदिरा पाएँगे
> किंतु हलाहल भी यदि होगा
> पीनेसे कब घबराएँगे! [२]

---

१ मधुबाला प्रलाप– पृष्ठ २१
२ वही— पृष्ठ ४६

हमारे कविने तो मानवके दो कदमोंको सुख-दुखके प्रागणमे बँटा हुआ ही माना है। अगर एक पग आनदमय उपवनमें है तो दूसरा दु खद मरुस्थलमे, एक हाथमे अगर आनदरूपी अमृत कलश है तो दूसरेमे हलाहलका पात्र। व्यक्ति सुख-दु खकी मिश्रित स्थितिमे ही अपने जीवनका अनुभव करता है, दोनोके बीचमे वह अपने जीवनको बराबर बँटा हुआ पाता है—

एक मधुवन बीच विचरित,
दूसरा पग स्थित मरुस्थल,
एकमें जीवन-सुधा-रस,
दूसरे करमें हलाहल। [१]

रोने एव प्रलाप करनेसे भी तो व्यक्ति दु खसे मुक्ति नही पा सकता। रोनेवाले व्यक्तिका दुख और बढ जाता है। जो व्यक्ति दु खद स्थितिमे अपनी स्थितिसे मुक्ति पानेकी प्रेरणा पाकर प्रयत्न करता है वह अपने प्रयत्नकालमे आशाओके रगीन स्वप्नोंमें अपने दु खको भूल ही जाता है फिर चाहे उसका परिश्रम विफल ही क्यो न जाता हो, पर प्रयास परिश्रम-कालमे वह अपनी मुक्तिका मार्ग खोज ही लेता है जहाँ कि विलाप करनेवाला अकर्मण्य बनकर अपनी जिंदगीका बोझ ढोते हुए स्मशान तक पहुँचता है।

जीवनकी सुरा, हालाकी माधुरी हर जगह शीघ्र ही विलीन हो जाती है, जूहीकी सुगधकी भाँति जल्द ही उड जाती है— जीवनका कठोर सत्य, हलाहलका अविनाशी तत्त्व, इन्सानके टूटे महल और मकबरे सब कहीं पड रह जाते हैं। हमारे कविने पलायनवादी वृत्ति अपनायी होती तो वह हलाहल पिलानेके लिए आगे बढता ही नहीं, वह उस मुर्देसे यह आग्रह ही न करता कि तुम्हें जीवनकी इन कठोर कटु-सत्य परिस्थितियोका बखान करना होगा, इस तरह विष-पान करके खामोश पडकर सो जाना—मर जाना उचित नहीं ताकि तुम्हारी अनुभूतिसे अन्य लोग लाभ उठा सकें—

---

१. मधुकलश— पृष्ठ ३१

गरल पान करके तू बैठा,
फेर पुतलियाँ, कर पग ऐंठा,
यह कोई कर सकता, मुर्दे, तुझको अब उठ गाना होगा !
विषका स्वाद बताना होगा ! [१]

अत. अब हमारे कविका वह मुर्दा उठकर अन्य लोगोंको विषका स्वाद चखाना चाहता है। हाँ, चखाना ही कहूँगा, सुनने और कहनेसे तो अनुभव नहीं होता और अनुभव ही ज्ञान है, अनुभव ही जीवन है। अत कवि कह रहा है कि जीवनके सत्यसे मत भागो, हलाहल पिओ, जीवनके सत्यसे वंचित रहना उचित नहीं। सत्य एव कल्पना-में अंतरका परिचय तो तभी पाया जा सकता है अन्यथा नहीं और जीवनके माधुर्यका परिचय मृत्युके विनाशमय दर्शनोंमें मिलता है—

तभी मैं करता यदि प्रस्थान
अधूरा रहता मेरा ज्ञान,
मुझे आया है मधुका स्वाद
हलाहल पी लेनेके बाद। [२]

सुखमय जीवन जो सीधी-सादी सडकोंसे पार किया जा सकता है। वह भला कैसा जीवन ? जीवनकी यात्रा तो नित्य ही टेढ़े मेढ़े रास्तेसे चलती है। उसमें जितनी यातनाएँ अधिक होती हैं, जीवन उतना ही अधिक रंगीन भी बनता है। दु खद स्थितिमें ही व्यक्ति अपनी आत्मशक्तिका भी परिचय पा लेता है कि वह परिस्थितियोंका दास है या वह परिस्थितियोंसे टकरानेकी क्षमता भी रखता है ? संसारका अनेक बार विनाश हुआ है फिर भी तो मानव अपनी परंपरासे अमर बना हुआ है, अत संसारकी नश्वरतासे न घबराकर एक बार विपत्तियोंसे लोहा लेना ही जीवन है— और तभी कहीं हम यह भी जान सकेंगे कि हम ही परिस्थितियोंसे भयभीत हैं या परिस्थितियाँ भी एक साहसी व्यक्तिसे डर जाती हैं—

हलाहल पीकर लिया जान,
कि तू है कितना महिमावान,

१. एकांत संगीत—पृ. ९९
२. हलाहल—पृ. ५०

महीं है उनमें तेरा स्थान
कि जिनका होता है अवसान,
हुई है फिर फिर जगकी सृष्टि,
हुआ है फिर फिर जगका नाश,
कि तू दोनों स्थितियोंसे भिन्न
तुझे हो फिर फिर यह विश्वास ।[1]

और भी,

हलाहल पीकर लेगा जान
स्वयं निज सीमाका विस्तार,
कि तू है संसृतिसे भयभीत
कि तुझसे भय खाता संसार ।[2]

हमारे कविने हलाहलके कृतिपरिचयमे बताया है कि किस तरह दो भिन्न मृत्युशय्या स्थित व्यक्तियो (उनकी पत्नी श्यामा, एवं माताजी) के भावोंसे वे यह समझ सके कि जो मौतसे भयभीत होते हैं, जिन्हें जीवनसे मोह होता है, वे जीना भी नही जानते और जो मौतको भी चुनौती दे सकते हैं, उनके सामने तो मौत भी आनेसे घबराती है। वास्तवमे भय ही मृत्यु है और अभयता, निर्भयतामे तो विष भी अपनी कठोरता खो बैठता है और हलाहल अमरतादायक सिद्ध होता है। देखिए —

पहुंच तेरे अधरोंके पास
हलाहल कांप रहा है, देख,
मृत्युके मुखके ऊपर दौड
गयी है सहसा भयकी रेख,
मरण था भयके अदर व्याप्त,
हुआ निर्भय तो विष निस्तत्व,
स्वयं हो जानेको है सिद्ध
हलाहलसे तेरा अमरत्व ।[3]

---

१. हलाहल– पृष्ठ १०३
२. वही– पृष्ठ १०५
३. वही– पृष्ठ १०३

हमारे कविने अमिय, हलाहल, हालाको एक ही रस बताया है जो है जीवनरस किंतु व्यक्ति अपनी-अपनी रुचिके अनुरूप उसे अनुभव करता है। यह दृष्टिभेद ही है जो विश्वको इन विविध रूपोंमें विभक्त दिखाता है अन्यथा जीवन तो समान होता ही है.–

हलाहल और अमिय मद एक,
एक रसके ही तीनों नाम,
कहीं पर लगता है रतनार,
कहीं पर श्वेत, कहीं पर श्याम,
हमारे पीनेमें कुछ भेद,
कि कोई पड़ता झुक-झुक झूम,
किसीका घुटता तन-मन प्राण
अमर पद लेता कोई चूम। [१]

जीवनकी कितनी वास्तविक अभिव्यक्ति है। कोई जीवनमें नशेका अनुभव करके जी जाता है, उसे महसूस ही नहीं होता कि वह जी रहा है, कोई अपना दम घुटते हुए पाता है तो कोई मृत्युसे टकराकर अमर पदका अधिकारी बन जाता है। इन तीनों रसोंकी अभिव्यक्ति करते हुए हमारे कविने सुराको कल्पना-स्वप्न, हलाहलको कटु-सत्य, एवं अमृतको जीवनका आदर्श बताया है, जिसे कोई विरला ही पाता है और पानेवाला मौन हो जाता है –

सुरा है जीवनका वह स्वप्न
फड़कता देख जिसे संसार,
हलाहल जीवनका कटु सत्य,
जिसे छू करता हाहाकार,
अमृत है जीवनका आदर्श
मगर है पाता उसको कौन ?
और जो करता भी है प्राप्त
साथ वह लेता है व्रत मौन। [२]

---

१. हलाहल–पृष्ठ ८८
२. वही–पृष्ठ ८९

किंतु हम साहित्यको केवल सत्यपर स्थित नहीं रख सकते। साहित्यमे सत्य एव कल्पनाका सामजस्य होता ही है । अगर 'जो है सो है' का सिद्धात अपनाया जाएगा तो वह कलाकारका मूल्य कम कर देगा। कलाकार एव साहित्यकारका जो तीन कालोपर आधिपत्य बताया जाता है, उसका यही तो मूल अभिप्राय है कि साहित्यकार भविष्यके लिए अपनी सजग कल्पनाके आधारपर कोई सदेश प्रस्तुत करता है अथवा अपनी सजग कल्पनाके आधारपर वह भविष्यका रूप चित्रित करता है। हमारे मैथिलीशरण गुप्त भी इसी बातके पक्षपाती हैं—

हो रहा है जो जहाँ, सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा ?
किंतु होना चाहिए कब क्या कहाँ,
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ। [१]

हमारे कविपर स्वप्नवादी होनेका आरोप लगाया जाता रहा है। उन्होंने इसके उत्तरमे कहा है कि आजके सशक ससारको वह विश्वास दिलानेमे असमर्थ है क्योकि वहमका इलाज होता ही नहीं, भविष्य ही इस बातको निर्धारित करेगा कि कविके स्वप्न कितने सशक्त होते है और वे कोरी कल्पनापर आधारित नहीं होते। इन पक्तियोंमे कविका अपनी वाणीमे आत्मविश्वास भी फूट पडा है और उनके साहित्यके शिव पक्षकी भी झलक इसमे दिखायी देती है—

सत्य मिटा जाता है, मै हूँ
सपनोका ससार बनाए,
पर इन सपनोंमें ही सचका
मै हूँ कुछ-कुछ अश बनाए,
सत्य प्रतिष्ठित होगा जिस दिन
फिरसे, इसका राज खुलेगा,
आज सशक जगतको कैसे मै इसका विश्वास दिला दूँ। [२]

---

१. साकेत—पृष्ठ २७
२. आरती और अगारे—पृष्ठ १३२

: ३ : काव्य सिद्धांत

काव्यकी आत्मा

कविवर बच्चनने रसको काव्यकी आत्मा माना है। उनके इस आशयको स्पष्ट करनेवाली स्वीकारोक्तियाँ मिल जाती हैं। देखिए–

नीरसको रसमय कर देना,
हो मेरी रसनाका साका।[1]

और भी,

रस-डूबा, स्वरमें उतराया
यह गीत नया मैंने गाया।[2]

और भी,

रस-अर्थ रहित ध्वनियोंमें मै क्या गाऊँ।
तमसा तटके कवि तुमको शीश नवाऊँ।[3]

प्रणय-पत्रिकाकी भूमिका 'अपने पाठकोंसे' के पृष्ठ १२ पर हमारा कवि कहता है, 'गीत रस हैं, रसकी वर्षा करते हैं, मनुष्यको सारग्राही बनाते हैं। रस जीवनकी सहज स्वाभाविक आवश्यकता है।'

कविवर बच्चन रसवादी कवि खैयामसे अत्यधिक प्रभावित रहे हैं, यहाँ तक हम कह सकते हैं कि उनके आरंभिक कालकी प्रेरणाके स्रोत वे ही रहे हैं। अत उनका काव्यकी आत्मा रसके प्रति आग्रह सहज स्वाभाविक है। उन्होंने मधुकलशमें भी रसकी ओर अपना रुझान स्पष्ट शब्दोंमे अभिव्यक्त किया है–

शुष्क ज्ञानी चाहिए तो
चाहिए रससिद्ध कवि भी।[4]

रसको काव्यकी आत्मा माननेसे तो कोई भी काव्य-सम्प्रदाय इन्कार नहीं करता। भले ही भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंने काव्यकी आत्मा

---

१ आरती और अंगारे–पृष्ठ २८
२ वही–पृष्ठ १९७
३ वही–पृष्ठ ३२
४ मधुकलश–पृष्ठ ३२

कुछ और मानी हो, पर उसका विवेचन करनेसे रस सिद्धांत ही समीचीन एवं सर्वश्रेष्ठ सर्वमान्य काव्य-सिद्धान्त ठहरता है और हमारे कविकी उपरोक्त स्वीकारोक्तियोंसे यह स्पष्ट है कि रसकी साधना ही कविका मुख्य कर्तव्य है। रसके प्रति अटूट आस्था रखना किसी भी कविके लिए गौरवकी बात है।

हमारे कविने अपने संपूर्ण काव्यको सरस बनाए रखकर अपने सिद्धांतोंको कोरा सिद्धांत रह जानेसे तो बचाया ही है और साथ ही सरस कविताके द्वारा, रसके प्रति आस्थाके द्वारा अपना ौरव बनाए रखा है। कटुसे कटु एव कठोर आलोचनाओंने भी कविकी रचनाकी लोकप्रियतामें कोई व्याघात नहीं पहुँचाया, उनकी रचना अपनी सरसताके कारण ही एक युगसे सहृद पाठकोंसे अपना सबंध जोड़े हुए है। और हमारे कविने कभी आलोचकोंकी आलोचनाकी पर्वा भी नहीं की है।

काव्य हेतु

हम इस विषयपर ऊपर कुछ विवेचना कविके दृष्टिकोणकी कर चुके हैं, कि जहाँ उन्होंने प्रतिभाका काव्य हेतुओंमें अनिवार्य माना है वहाँ उन्होंने व्युत्पत्तिके सिद्धान्तको भी स्वीकारा है, पर इसके अतिरिक्त हमारे कविने प्रेम एव पीड़ाको भी काव्य हेतुओंके अतर्गत माना है। "प्रकृति भी कविको काव्य-रचनाकी प्रेरणा देती रहती है" हमारे कविने इस सिद्धान्तको भी स्वीकार किया है। उनको इस आशयको व्यक्त करनेवाली अनेक रचनाएँ मिल जाती हैं पर इन सबके पीछे व्युत्पत्तिका ही हाथ रहता है जिसके अतर्गत अध्ययन, लोकानुभूति एव प्रकृति दर्शन आ ही जाते हैं। कविका रात-रातभर जागना एक सहज स्वाभाविक बात मानी गयी है। हमारे कविने भी इस बातको स्वीकार किया है—

> जिन रातोंमें सारा आलम सोया करता,
> उनमें संयमधर, शायर जागा करते हैं।[1]

---

१. आरती और अंगारे—पृष्ठ ६६.

और भी,

मौन रहा करता हूं लेकिन, कविका दर्द कसाला
तब तक जब तक हर पीडा है गीत नहीं बन जाती।[१]

और भी

उर क्रदन करता था मेरा, पर मुखसे मने गान किया
मैंने पीडाको रूप दिया जग समझा मैंने कविता की।[२]

अनुभूतियोके भावोंकी तरल, कोमल सूक्ष्म भमिपर उतारनेके लिए हमारा कवि संवेदनशीलताको आवश्यक मानता है।[३] इतना ही नही कवि तो यहाँ तक मानता है कि 'संवेदनशील व्यक्तिका नितात एकात-एकाकी अनुभव भी एकात-एकाकी नही रह सकता। यदि उसस भाव और रागकी उत्पत्ति होती है तो उसीके सहारे वह दूसरोको अपना अनुभव भी दे सकता है।'[४]

काव्यमे अनुभूतिका स्थान निर्धारित करते हुए हमारा कवि कहता है कि 'अपनी इस धरतीपर जो बहुरग अनुभूतियाँ हैं वे भी हमारा आस्था माँगती हैं और हमारे कठोंसे मुखरित होनेका अधिकार रखती हैं।[५] उसी विषयम वे आग लिखते हैं, गीतकारके लिए आत्मानुभूति आवश्यक है। अनुभूतिको स्थान घटनाओं तक सीमित रखना ठीक नही।[६]

इससे यह ध्वनित होता है कि कवि अपनी शक्तिसे ससारके किसी भी अनुभवको भावनाओंके स्तर तक उतार सकता है। उन्हींके शब्दोंमे ससारका शायद ही कोई अनुभव हो जो भावनाओंके स्तर-पर न उतारा जा सके। जिस दिन कविने अभावोंको भी भावोंके स्तरपर उतार दिया उस दिन उसकी सबसे बडी विजय हुई थी –

---

१ प्रणयपत्रिका–पृष्ठ ६३
२ मधुबाला–पृष्ठ ५८
३ वही–भूमिका पृष्ठ १२
४ वही–भूमिका पृष्ठ १३
५ आरती और अगारे–भूमिका पृष्ठ १४
६ प्रणयपत्रिका–भूमिका पृष्ठ १२

एक अभावोंकी घडियोंमें
भाव भरा मैं बोला । [१]

हमारा कवि मानता है कि जीवनकी, भावनाओं और प्रतिक्रियाओ-की तीव्रतासे ही कविता प्रसूत होती है और जितने हृदयोंमे कविकी सम एव सह अनुभूति होती है उतने हृदयोंमें प्रतिध्वनित होती है । जीवनकी अनुभूतियोका मुझे इतना भरोसा है कि मैंने उन्हीपर अभिव्यक्तिका रूप निर्धारित करनेका भार भी छोड दिया है । [२]

सवेदनाके ही विषयमे बोलते हुए हमारा कवि कहता है, " वही कवि सबसे अधिक सफल समझा जाएगा जो अपने युग-समाजकी समस्त मूलभूत, व्यापक और तत्वपूर्ण संवेदनाओसे स्वयप्रेरित हो और दूसरोको भी प्रेरित कर सके । " [३] कविकी उक्ति निस्सदेह सार्थक है । जिस कलाकारकी संवेदना जितनी व्यापक होती है वह उतना ही महान् कलाकार माना जाता है । उपन्यास सम्राट् प्रेमचदजीकी सहानुभूति - संवेदनाकी भी यही व्यापकता थी जिसने उन्हे युग-निर्माता कलाकार बना लिया ।

हम ऊपर जीवन-सघर्षके अतर्गत कविके जीवनके प्रति आकर्षण-को देख आये हैं । सामयिक परिस्थितियोमे भी कविकी मानवके प्रति सहज सहानुभूतिके जागरणका हम परिचय पा चुके हैं ।

हमारे कविका कथन है कि उनकी अनुभूति व्यक्तिगत होते हुए भी समष्टिगत है । उनके शब्दोंमें, ' मैं अपने हृदयकी गहराई नापता हूँ और उससे दूसरेके हृदयकी भी गहराई नप जाती है । " [४] हमारे कविको तो इतना विश्वास है कि मै जो कुछ लिखकर खोजते हैं वही अन्य लोग पढकर ढूंढते हैं । उनके शब्दोमे देखिए, " मेरा प्रकाशन-लेखन तो इसी आधारपर है कि मैं अपने अनुभवों, अपनी प्रतिक्रियाओ, अपनी खोजों अपनी प्राप्तियो, अपनी प्रेरणाओंमे दूसरोंसे संबद्ध हूँ । वास्तवमे मैं अपनी कविताओको लिखकर जो ढूंढता हूँ, वही आप

१. प्रणयपत्रिका- भूमिका पृ १२
२ आरती और अगारे-भूमिका पृ. १७
३. त्रिभगिमा-भूमिका पृ ८
४ प्रणयपत्रिका-भूमिका पृ. ९

पढकर ढूँढते हैं इस प्रकार कविता लिखने और कविता पढनका आतरिक लक्ष्य एक ही है।' १

इसीलिए ही शायद हमारा कवि अपनेपर हँसनेवाल युगको पुकारकर कहता है कि आज हम एक-दूसरेपर हँसना नही चाहिए क्योकि मेरी अनुभूतियाँ दुबलताएँ परवशताएँ, मेरा रहस्य मानव मात्रका है—

एक दूसरेपर हँसनेका
वक्त कभी था आज नहीं है
राज तुम्हारा मेरा जो क्या
मानवताका राज नहीं है ?
दुबलताएँ प्राय किलकी
परवशताएँ ही होता हैं
तुम भी अपनी आँख भिगो लो म भी अपनी आँख भिगो लू। २

इसम सदेह नही कि प्रत्यक अनुभूति व्यक्तिगत होती है और कुछ अशोमे साहित्य भी व्यक्तिगत सीमाओंमे घिरा रहता है फिर भी हमारे कविका विचार है कि कवल वे ही अनुभूतियाँ अभिव्यक्तिके योग्य होता हैं जिनमे सावजनिक अनुभूतिका भाव भी सहित रहता है। कविक शब्दोम यह तो निर्विवाद है कि कलामे अभिव्यक्ति पानवाला प्रत्यक अनुभूति व्यक्तिगत हा होती है पर कलाम अभिव्यजित होने योग्य प्रत्यक अनुभतिको कुछ एसा भी होना पडता है जो सावजनिक हो। ३

आज भा उनका कविताका लाकप्रियताको देखते हुए यह बात निर्विवाद रूपस कही जा सकता है कि उनकी अभिव्यक्त अनुभूतिको जनताने स्वानुभूति मानकर अपनाया है। आज २५ वर्षोंकी अवधिके उपरात भी उनकी रचनाआंके नित्य नये-नये सस्करणोका प्रकाशम आना इस बातका परिचायक है कि आज भा उनकी कविताकी माँग

१ प्रणय-पत्रिका भूमिका पृ ९
२ वही— पृ ८१
३ बुद्ध और नाचघर-भूमिका पृष्ठ २०-२१

है। जनताने उसमे नित्य नूतनताका गुण, चिर यौवनका गुण पाया है या नही यह मैं नही कहूँगा पर हमारा कवि अवश्य ही ऐसे गुणका भर देना एक कविका आदर्श मानता है हालाँकि वह इस बातका दंभ भी नही रखता और दम भी नही भरता कि उसकी रचनामे वह गुण है पर उसे कविताकी चौथाई शताब्दि तक जीवित रहनेका आनद अवश्य है, जो स्वाभाविक ही है। उनके ही शब्दोमे, "कविका आदर्श तो यही होना चाहिए कि वह काव्यके ऐसे रमणीय रूपका निर्माण करे जिसमे दिनानुदिन नवीनताका आभास होता रहे।"[1]

काव्यका प्रयोजन

कविवर बच्चनने आनदको काव्यका मूल प्रयोजन माना है और उससे ही लोकहितकी व्यवस्थाकी चर्चा की है। ऊपर हम उनकी प्रणयपत्रिकाकी भूमिकामें दी गयी व्याख्याओंको देख आये हैं। उन्हींके प्रकाशमे उनके इस तत्त्वपर भी प्रकाश पडता है। जैसे उनका कथन है कि "वास्तवमे मैं अपनी कविताओको लिखकर जो ढूँढता हूँ, वही आप पढकर ढूंढते हैं, इस प्रकार कविता लिखने और कविता पढनेका आतरिक लक्ष्य एक ही है।"[2] इससे यही प्रतीत होता है कि काव्यसे रचयिता और पाठक दोनोको आनद प्राप्त होता है। उन्होंने लिखा भी है कि कवि अपने व्याकुल हृदयको शात करनेके लिए ही लिखता है,

कवि अपनी विव्हल वाणीसे अपना व्याकुल मन बहलाता।[3]

कविने बताया ही है कि अनुभूति एककी होकर भी अनेककी हो जाती है। अत उससे प्राप्त होनेवाला सुख भी कविके मनसे सहृदय मात्र तक प्रसारित होता रहता है। मधुबालाकी भूमिकामे हमारे कविने कवितासे जो अपेक्षा रखी है उसे कविके ही शब्दोंमे देख लीजिए,

---

१. मधुबाला-भूमिका पृष्ठ ७.
२. प्रणयपत्रिका-भूमिका पृष्ठ ९.
३ एकांत सगीत-पृष्ठ ६६.

"कवितासे एक माँग मैंने हमेशा की है कि वह लिखनेवालेको आनद दे, सुनानेवालेको आनद दे, सुननेवालेको आनद दे, पढनेवालेको आनद दे।"[1]

हमारा कवि कविताको इतना सशक्त मानता है कि कविताका आनद अनुभव किया जा सकता है, कराया नही जा सकता, उसके लिए किसी प्रकारके मध्यस्थकी भले ही वह कवि स्वय क्यो न हो, आवश्यकता नही रहती। उनके ही शब्दोमे, "कवितासे जिस काव्यानदकी प्रत्याशा की जाती है उसे मुहैया करनेका काम केवल कविताका है।"[2]

साधारणतया जग जीवनके प्रति मानव मात्रकी भावनाओमे साम्य पाया जाता है और यही कारण है कि किसीकी रचनाको पढकर हमें उसे किसी अजनबीकी रचना नहीं समझते और हम कह भी उठते हैं कि यही तो मैं भी कहना चाहता था। अत यह साधारण धरातल भावनाओकी समानताका ही परिचायक है। हमारा कवि भी कहता है, "आप अगर मेरी कविताओकी ओर आकर्षित होते हैं, उनसे आपको कुछ आनद, कुछ रस कुछ शांति, सतोष या प्रेरणा मिलती है, तो मैं यही समझता हूँ कि जग-जीवनके प्रति आपके भीतर कुछ उसी प्रकारकी प्रतिक्रिया होती है, जैसी मेरी होती है।"[3]

कविताके आनदपर प्रकाश डालते हुए हमारा कवि कहता है, "कविताएँ कई दृष्टियोमे पढी जाती हैं पर सबसे स्वस्थ दृष्टिकोण है कि उन्हें आनदके लिए पढा जाए, और कविताका आनद इतना उदार है कि वह अपनी परिधिमे उन्माद, अवसाद, आवेश, आक्रोश, व्यग्रता, मसवेदना आदि-आदि सभीको स्थान दे सकता है। कविताका आनद है जीवनका एक हल्का-सा धक्का — मुझे पहचाना।"[4]

---

१. मधुबाला–भूमिका पृष्ठ ८.
२ प्रणयपत्रिका–भूमिका पृष्ठ ७.
३. वही–भूमिका पृष्ठ ९.
४. बुद्ध और नाचघर– भूमिका–पृष्ठ २१.

व्यक्ति जब कविताके समीप पहुँचता है, उसे आनदकी गध आने लगती है, प्राणोमे हलकी या तीव्र उथल-पुथल महसूस होती है :—

> जब आनद-सुगधके,
> साँसोंके साथ आने
> प्राणोंमें उथल पुथल मचाने,
> सामने, बस, जानेका आभास हो,
> तब समझ लो
> कि तुम कहीं कविताके आसपास हो। [1]

'जनगीता' के मगलाचरणमे भी हमारे कविने अपने आनद भावका परिचय दिया है कि जनगीताकी रचनासे उन्हे एक विशेष सुख मिला है और उनकी यही हार्दिक कामना है, कि जो उसे पढे, सुनाएं उन्हें भी वही सुख प्राप्त हो। [2]

हमारा कवि साहित्यको केवल मनोरजनका साधन नही मानता, इसलिए ही उन्होने साधारण मनोरजनात्मक कविताओमे रुचि प्रदर्शित करनेवालोका अपरिष्कृत अथवा अस्वस्थ प्रकृतिवाला पाठक माना है। कविताका स्वरूप आनदमय अवश्य है किंतु यह आनद स्थूल मनोरजनका वाची नही है। इस आनद प्राप्तिके लिए तो पाठकमे भी सुरुचिपूर्ण गहन अध्ययनकी अपेक्षा होती है। कविके शब्दोंमे, "जिसने लिए कवि अथवा लेखकने साधना की है उसका आनद लेनेके लिए पाठकको भी साधना करनी पडती है। कवितासे सहज ही आनद प्राप्त करनेकी माँग बढती जा रही है – बस, कविता तो ऐसी हो कि तीरकी तरह दिलपर चोट करे। यह अस्वस्थ प्रवृत्ति है।" [3]

काव्यका द्वितीय प्रयोजन है लोकहित, उसका शिव पक्ष। अब हम इसके विषयमें कविकी विचार-धाराका अवलोकन करेगे। कविवर

---

१. त्रिभगिमा– पृष्ठ १३७–३८.
२. जनगीता– मगलाचरण–पृष्ठ १९.
३. पल्लविनी– एक दृष्टिकोण–पृष्ठ ३७.

बच्चनने जिस तरह आनंदको काव्य-प्रयोजनका गुण बताया है उस तरह स्वतंत्र रूपसे लोकहितकी भावनापर प्रकाश नहीं डाला किंतु उनकी रचनाओंमें लोकहितकी भावना निहित रही ही है और अनेक स्थानोंपर काव्यमें ही कविके इस आशयके परिचायक पद्यांश मिल जाते हैं। हमारा कवि स्वस्थ काव्य-सृजनके लिए जन सम्पर्कको अत्यंत आवश्यक मानता है और इसके लिए वह कविके आत्मविश्वासी होनेपर ज़ोर देता है और उसकी माँग है कि कविको जनताकी सुरुचिमें आस्था हो।[1] कविने यहाँपर सुरुचि शब्दके द्वारा जनताकी परिष्कृत रुचिके माध्यमसे जन-हितकी भावनाके पक्षको ही अपनाया है और अपनेको नित्य ही जीवित, जाग्रत, संवेदनशील जन-समूहके साथ माना है। उनके ही शब्दोंमें, " मेरा दावा इसके अलावा कुछ नहीं है कि मैं एक जीवित, जाग्रत, संवेदनशील जनसमूहके साथ हूँ, कभी अपने अंतःस्वरसे उसे मुखरित करते, कभी उसके अंतःस्वरसे स्वयं मुखरित होते।"[2] इसी भावकी परिचायक पंक्तियाँ मधुबालाके 'आत्मपरिचय' अंशमें मिलती है जहाँ कविने अपने मनमें संसारके लिए प्रेम और संसारके जीवनका बोझ अपने ऊपर लदा बताया है,

> मैं जग-जीवनका भार लिये फिरता हूँ,
> फिर भी जीवनमें प्यार लिये फिरता हूँ।[3]

हमारे कविने 'सतरंगिनी' की 'कोयल' कवितामें जन हितकी भावनापर प्रकाश डाला है। कोयल तो सदा-सर्वदा कविके प्रतीक-रूपमें अपनाया जानेवाला पक्षी है, और यहाँपर उसीके माध्यमसे कविने अपने मनकी बात कही है

> नहीं चाहती दिग्दिगंतमें कीर्ति-गान मेरा गूँजे,
> नहीं चाहती आकर दुनिया सादर पद मेरा पूजे।

---

१. मधुबाला–भूमिका–पृष्ठ ९.
२. वही– भूमिका–पृष्ठ ९.
३. मधुबाला– पृष्ठ १३२

स्वर्ग प्रसन्न हुआ यदि मुझसे, मुझको ऐसा गान मिले,
जिसको सुनकर मरे हुओंको जीवनका वरदान मिले।[1]

चाँदनीको आकाशमे फैलकर प्रकाश-आलोक बिखेरते देख कविकी भावनाएँ जाग उठती हैं और वह भी चाहता है कि काश ! वह भी इसी भाँति बिखर सकता ! इससे भी कविके लोक-हितकी भावनाका परिचय मिलता है :–

चाँद निखरा, चंद्रिका निखरी हुई हैं,
भूमिसे आकाश तक बिखरी हुई है,
काश, मैं भी यों बिखर सकता भुवनमें;
चाँदनी फैली गगनमें, चाह मनमें।[2]

'धारके इधर-उधर' में हमारे कविने 'देशके लेखकोंसे' कवितामें लेखकोंको अपनी लेखनी, अपने देशको अर्पण करनेका आग्रह किया है, जिसका अभिप्राय भी यही है कि आज कवि-कला-विदोंको अपने देशकी स्थितिको सुधारनेके लिए कोई रचनात्मक साहित्य प्रस्तुत करना होगा :–

न आज स्वप्न-कल्पना-सुरा छको,
न आज बात आसमानकी बको,
स्वदेशपर मुसीबतें, सुलेखको,
उसे प्रदान आज लेखनी करो।[3]

उसी पुस्तकको 'देशके कवियोंसे' कवितामें भी कविको यही जनहितका संदेश दिया है और भारतीकी शक्तिमे अपनी आस्था व्यक्त की है:–

---

१. सतरंगिनी–पृष्ठ २४
२. मिलन-यामिनी–पृष्ठ १९
३. धारके इधर-उधर – पृष्ठ ८१

सुवर्ण मृत्तिका हुई कलम छुई, अमृत हरेक बिंदु लेखनी चुई,
कलम जहाँ गयी वहाँ विजय हुई, विफल रही कहीं कभी न भारती

*　　*　　*

करो विचित्र इंद्रधनु विभा परे, तजो सुरम्य हस्तिरत घर हरे,
न व्यग्र नखत निहारकर निहाल हो न आसमान देखते रहो खड़े,
तुम्हें जमीन देशकी पुकारती।[1]

कवि तो अपने अतरमे आग लिये फिरता ही है। उसका दुःख-दग्ध हृदय ही मधुर गीतोंका उपहार देता है। हमारा कवि भी इसी बातका समर्थक है कि आग अतरम छिपी रहनी चाहिए उसकी जलन अपने लिए एव प्रकाश औरोंके लिए होना चाहिए। यह आग बड़े ही पुण्योंसे प्राप्त होती है। देखिए –

पुण्य इकट्ठा होता है तब आग कलेजेमें आती है
इसका मर्म समझते वे ही, जिनका तन यह सुलगाती है
भीतर ही रखते जो इसको बनते राख धुएँकी ढेरी
बाहर यह गाती मुसकाती, ताप बटोरो ज्योति लुटाओ।
मेरे अतरकी ज्वाला तुम दीपशिखा बन जाओ।[2]

आजके विश्वमे जहाँ प्रभुकी दया भी लोपप्राय हो चुकी है और मानव मानवका शत्रु बना हुआ है चारो ओर निराशाके बादल मँडरा रहे हैं पर कविको अपने ऊपर विश्वास है कि वह अभी जीवित है उसकी वाणी जीवित है और वह वातावरण बदल देगा, अधकारको अपने प्राणोंके प्रकाशसे भर देगा –

अबरमें प्रभुकी करुणाके चिह्न नहीं देते दिखलायी,
अवनीपर मानवके ऊपर मानव आज बना अन्यायी,
किंतु नहीं नैराश्य पराजित होनेकी आवश्यकता है
गीत अभी कविके कठोंमें – जाकर यह जगसे कह आओ।[3]

---

१ धारके इधर उधर–पृष्ठ ८३–८४
२ प्रणयपत्रिका–पृष्ठ १३४
३ प्रणय-पत्रिका– पृष्ठ १३५

कविने अपने मानसकी जलनको और स्पष्ट करते हुए एवं चेतावनी देते हुए जन-हितकी भावनाको ही अपना लक्ष्य बताया है —

जलना अर्थ उन्हींका रखता जो कि अंधेरेमें खोयोंको,
हाथोंके ऊपर अवलंबित आकुल शंकित दृग कोयोंको,
आशाका आश्वासन देकर जीवनका संदेश सुनाते,
जो न किरणकी रेख बनोगे, धूलि-धुएंकी धार बनोगे।
हे मनके अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे। [1]

और कविता भविष्यके लिए संदेश तभी तो रख सकती है जब वह अतीत और वर्तमानको भी अपना वर्ण्य विषय बनाए; भूतकी अनुभूतियोंके आधारपर वर्तमानकी समस्याओंको सुलझाकर भविष्यको प्रशस्त करना जीवन एवं साहित्यका लक्ष्य ही रहा है और कविको तो त्रिकालदर्शी माना ही जाता है–

कविके उरके अंत पुरमें वृद्ध अतीत बसा करता है,
कविकी दृग कोरोंके नीचे, बाल भविष्य हँसा करता है,
वर्तमानके प्रौढ स्वरोंसे होता कविका कंठ निनादित,
तीन काल पद मापित मेरे, क्रूर समयका डंक मुझे क्या। [2]

कला जीवनका स्वप्न है जो जीवनमें ही निखरकर अपनी कलात्मकताका परिचय देता है (कला जीवनके लिए है), वह केवल दर्पण नहीं है जिसमे कलाकार अपनी भावनाओंका प्रतिबिंब देखता हो पर यह तो दीप-शिखा भी है जो जीवनको अमरताकी ओर अग्रसर करता है —

स्वप्न जीवनका, कला है, जो कि जीवन —
में, निखरकर वह कलासे झाँकता है,
यह महज दर्पण नहीं है, दीप भी है
जो अमरताके शिखरको आँकता है। [3]

१. प्रणयपत्रिका–पृष्ठ १३६
२. वही–पृष्ठ ३५
३. आरती और अंगारे–पृष्ठ ८२

पुराने कलाकारोंकी कला-कृतियोंको देखकर कवि सोचता है काश! उसके हृदयमें भी वही ज्वाला होती तो उसके आतपमें निराश लोम आशाकी उष्णता पाकर जी उठने—

एक लपट उस ज्वालाकी जो मेरे अंतरमें उठ पाती,
तो मेरी भी दग्ध गिरा कुछ अंगारोंके गीत सुनाती,
जिनसे ठंडे हो बैठे दिल, गरमाते गलाते अपनेको।[४]

हमारा कवि तो ऐसा गीत गाना चाहता है जिससे भूमि स्वर्गसे भी प्रिय बन जाती।[५] वे तो मानते हैं कि केवल कविकी वाणी ही सर्वहितायकी भावना रख सकती है

सबके हितकी बात अकेली कविकी वाणी कर सकती है
अपने स्वरमें आनेवाली मानवताका भाग लिये मैं।
आज न मुझसे बोलो, अपने अंतस्तलमें राग लिये मैं।[७]

कवि अपनी कवितामें इतनी शक्ति तो नहीं बताता कि वह पृथ्वी-पर झड़कर गिरे हुए फूलोंमें प्राण भर सके। पर हाँ, वह यह अवश्य चाहता है कि उसकी वाणी मनकी सूखी, मुर्झायी कलियोंको विकसित कर सके —

मधुवनके जो फूल गये झड़ अब तो उनकी शरण धरणि हैं,
मनके जो सूखे-मुर्झाये ऐसे ही कुछ फूल खिला लूँ।[१]

कवि भी संदेशवाहक होता है। अतः हमारे कविने उसकी तुलना नबीसे की है जो जीवन जीनेका उपदेश देता हुआ, प्रशंसा प्राप्तिका मार्ग बताता हुआ अपने पदकी मर्यादाका पालन करता है —

कवि
होता है नबी
नबी उपदेश देनेसे नहीं चूकता,
पड़ जाती है बान,

१ आरती और अंगारे-पृष्ठ ८४
२ वही-पृष्ठ १२५
३. वही-पृष्ठ १२७
४ वही-पृष्ठ १३१

अंतमें थोडासा व्याख्यान ।
जीवन सब दिन नहीं रहता खेल,
नहीं तो प्रकट करता यह चाह—
हंसते-हंसाते,
उछलते-कूदते,
शोर मचाते,
चले जाओ जगतीकी राह,
लूटते वाह वाह । [१]

हमारे कविने इसी सग्रहमे सकलित ' दिल्लीके बादल '[२] कवितामें बादलोसे सारी भारत-भूमिको सराबोर करने व सुखी बनानेका आग्रह किया है और उन्हें केवल दिल्लीको खुशहाल रखनेकी भावनासे हटनेकी सलाह दी है । कविको आत्मविश्वास है, अपनी कवितापर हो न हो पर अपने मानवपर, इसलिए ही वह अपने गीतोंमे वह कल्याणमय भावना निहित मानता है जो विश्वको फिरसे हरा-भरा बना देगी —

गीत मेरे प्रतिध्वनित होते अगर है
तो अभी तक सर्वनाश नहीं हुआ है,
सृजनके कुछ बीज बाकी रह गये हैं,
प्रीति पनपेगी यहाँ फिर,
शिशु हंसेगे फिर यहां पर,
वृद्धजन, उगते, उभरते और बढते
नवयुवक-नवयुवतियोको
सिर हिला आशीष देंगे । [३]

आज हमारा कवि युगवाणीमे वाणी मिलाकर मानवको स्वावलवनका पाठ पढाता हुआ देवावलम्ब छोडनेका आग्रह तो कर ही बैठा है जिसे हम ऊपर देख आये हैं । हमारा कवि आज देवताओका

१. बुद्ध और नाचघर–पृष्ठ ५६
२. वही–पृष्ठ १५७-५३.
३. त्रिभंगिमा–पृष्ठ १३३.

युग बीता हुआ बताता है और अपने लिए जीकर अमरता पानेको भी जीवन नहीं बताता अपितु मृत-कणोंमें चेतना भरना ही अपना लक्ष्य मानता है —

> गगनवासी देवताओंका जमाना लद गया है
> अमरता खुद जिये जानेमें नहीं है,
> (जबकि मरकर मूल्य कोई चुकाता हो।)
> अमरता है
> मृत्तिकाके मृत कणोंको
> मृत्युसे उन्मुक्त कर
> जीवित बनानेमें।[१]

स्पष्ट है कि काव्य जीवन्मृतोंको जीवन प्रदान करता है। कविके प्राण रससे सिंचित होनेपर जीवनल्लास नूतन उत्साह, आनद आ जाता है। काव्यमे जीवनकी आदर्श अभिव्यक्तिके फलस्वरूप उसके पाठक अपने चरित्रका भी उसीके अनुरूप सस्कार करना चाहते हैं। कवि-कृतिसे समाजहित जन-कल्याणकी व्यवस्थाका यही रहस्य है।

काव्यके तत्त्व

कविवर बच्चनने अनुभूतिको ही काव्यका आधारभूत तत्त्व माना है। उनके अनुभूति विषयक विचारोको हमने काव्य-हेतुके अतर्गत व्यापक रूपसे देख लिया है जिससे यह भी सिद्ध होता है कि वे अनुभूतिको केवल प्रत्यक्ष अनुभूतिके रूपमे ही नहीं, भावात्मक अनुभूतिके रूपमे भी स्वीकारते हैं। उन्होंने जहाँ अनुभूतिको अपने काव्यका आधारभूत तत्त्व माना है वहाँ वे कल्पनाके प्रति भी नित्य ही सजग रहे हैं। वे काव्यको मानव जीवनकी अभिव्यक्ति ही मानते हैं। उनके शब्दोंमें, 'कविता जगतीके प्रागणमें जीवनकी किलकारी।"[२] और, "मैंने जीवन देखा, जीवनका गान किया।"[३] हमारा कवि तो

---

१ त्रिभगिमा–पृष्ठ १७१
२. आरती और अगारे–पृष्ठ ५५
३ वही–पृष्ठ २२६

अपनेको व्यष्टि रूपमे भी समष्टिका प्रतिनिधि मानता हुआ उसकी अनुभूतिको अनुभव करता-सा कहता है,

बरस रहा है जगपर सुख-दुख
सबको अपना-अपना कविको
सबका ही दुख, सबका ही सुख,
जन-जीवनके सुख-दुखोंसे भीग रहा है कविका तन मन। [1]

"कविका जीवन सक्रिय हो तो उसे अनुभूतियोंके अधिक अवसर मिलेंगे और साथ ही कल्पनाएं भी।"[2] कविकी उक्तिके प्रकाशमे हम आज भी अपने कविको जीवन-सगरमे जुटा हुआ पाते हैं, इसलिए ही उनकी अनुभूतियोमें तीव्रता एव सजीवताके दर्शन होते हैं। कविकी सवेदना एव सहृदयता ही काव्यमे सजीवता, स्पष्टता, प्रभाव एव माधुर्यकी सृष्टि करती है। हमारा कवि मानता है कि अनुभूति प्रधान रचनामे रस (कोई भी रस-अमिय, हलाहल या हाला) की मधुर अभिव्यक्ति रहती है -

जीवन अनुभव स्वाद न कटु यदि
मेरी जिव्हापर आता
कौन मधुर मादकता मेरे,
गीतोंके अदर पाता। [3]

कल्पनाके पख लगाकर उडनेके लिए भी व्यक्तिको भूमिकी आवश्यकता रहती है। वह केवल व्योम विलासी बनकर तो रह नही सकता और न ही फिर उन स्वप्नोका कोई मूल्य ही रह पाता है। हमारा कवि भी मानता है कि जीवनकी जजीरोमे आबद्ध होनेके कारण ही तो वह कल्पनाके डैने फैलाकर उड सका है —

इस दुनियाकी जजीरोंमें
अगर न मैं जकडा जाता,

---

१. आकुल अतर–पृष्ठ ९२
२ प्रणय-पत्रिका–भूमिका पृष्ठ १३
३. प्रारंभिक रचनाएँ–भाग२–पृष्ठ ५४

काव्य कल्पनाके पंखोंपर,
कभी न पड़कर उड़ पाता।[1]

हमारा कवि अनुभूतिके मधुको कल्पनाके सौंदर्यसे युक्त रूपमें ही पेश करता है –

जो कि सृष्टिकी सुंदरतापर तितली-सा फिर फिर मंडलाए
किंतु सत्यकी ओर मधुपकी भांति चढ़े बे-आनाकानी।[2]

कवितामें कल्पना अथवा स्वप्नका महत्वपूर्ण भाग है, उसके अभावमें तो वह अपना कुछ रंग ही नहीं जमायेगी। केवल छाया-चित्रकारीका काम कलाकारका नहीं होता। उसके सामने कोई और दुनिया बनी रहती है जिसे वह साकार करना चाहता है –

जड़ जगतमें जागकर भी
जड़ नहीं व्यवहार कविका
भावनाओंसे विनिर्मित
और ही संसार कविका।[3]

• • •

कर लूंगा संतोष अगर मैं अपने सपने चार जिला दूं।[4]

इसमें संदेह नहीं कि जीवनकी कठोर क्रूर वास्तविकताएं व्यक्तिके स्वप्नोंको चूर चूर कर देती हैं और वह कभी अनुभव भी करता है–

—और छाती वज्र करके
सत्य सीखा
आज यह
स्वीकार मैंने कर लिया है
स्वप्न मेरे ध्वस्त सारे हो गये हैं।[5]

---

१ आकुल अंतर–पृष्ठ ४३
२ आरती और अंगारे–पृष्ठ ७६
३ मधुकलश–पृष्ठ ७६
४ आरती और अंगारे–पृष्ठ १३२
५ मिलनयामिनी–पृष्ठ १५३

फिर भी मानव-मन कठोर एवं कठिन वास्तविकताओके बीचमे ही उनको भूलनेके लिए, उनका दुःख भुलानेके लिए अपनी आशाओ-का जाल बुनना नही भूलता और हमारे कविको मानवमे विश्वास है कि उसमें अदम्य सृजना-शक्ति है, वह निराश होकर अधिक नही बैठ सकता, वह अवश्य उठेगा :—

मृत्तिकाकी सृजना सजीवनीमें,
है बहुत विश्वास मुझको।
वह नहीं बेकार होकर बैठती है
एक पलको
फिर उठेगी।[1]

और स्वप्नोमे केवल कपोल-कल्पना ही तो नही होती, उनका भी आधार तो अनुभूति ही है। अतः हमारा कवि भी कहता है कि इन स्वप्नोंमे सत्यका अश भी छिपा हुआ है, जो सत्यकी प्रतिष्ठापना-पर दुनियाको समझमे आएगा :—

पर इन सपनोंमें ही सचमुच मैं हूँ कुछ कुछ अश बचाये
सत्य प्रतिष्ठित होगा जिस दिन फिरसे इसका राज खुलेगा।[2]

कल्पनाका सम्मोहन कविकी आरभिक रचनाओंमे भी दिखायी देता है। कविताख्पी मुक्ताफलका परिचय देते हुए कविने कल्पनाका रूप इन शब्दोमे व्यक्त किया है :—

सागर मानवका अतस्तल, भरा भावनाका जिसमें जल,
उसमें था कविता मुक्ता-दल, यह परखो परखाओ।
कविवर माँझी इसके अदर, उतर कल्पनाकी डोरीपर,
लाया है इनको चुन-चुनकर, इनका मूल्य लगाओ।[3]

और भी एक उदाहरण देखिए :—

१. त्रिभगिमा-पृष्ठ १५४
२. आरती और अगारे-पृष्ठ १३२
३. प्रारभिक रचनाएँ भाग २-पृष्ठ ७०-७१

हृदय-तारसे मन स्पंदित है भाव तारसे तन कंपित है
चला कल्पना चपल उँगलियाँ कवि करता झनकार। [1]

डॉ सुरेशचंद्र गुप्तके शब्दोमे, उनकी रचनाओंमे केवल कल्पना-का विन्यास नहीं है वे सत्यके आलोकसे सहज मुखरित हैं। उनके काव्यमे जीवनकी अनुभूतियोंका जीवन्त चित्रण इसका प्रमाण है। [2]

काव्यमे व्यक्ति तत्त्व

काव्यमे व्यक्ति-तत्त्वपर विचार करते ही मनमे प्रश्न खडा होता है कि साहित्य वैयक्तिक चेतनाकी उपज है या सामाजिक चेतनाकी? कोई भी व्यक्ति, चाहे वह साहित्यकार या कलाकार ही क्यों न हो, सर्वप्रथम व्यक्ति होता है उसकी वैयक्तिक समस्याएँ होती हैं वह समाजका एक भाग बादमे ही होता है। हम मान सकते हैं कि सामाजिक अथवा राजनैतिक समस्याओंका प्रभाव व्यक्तिपर पडता ही है पर यह प्रभाव उसके समक्ष वैयक्तिक समस्याएँ खडी करेगा, उसकी प्रतिक्रिया भी वैयक्तिक ही होगी फिर भले ही साधारणी-कृत होकर वह समष्टिगत बन जाए पर मूलत वह प्रतिक्रिया वैय-क्तिक ही होती है। साहित्य-सृजनके पीछे भी तो वही वैयक्तिक प्रतिक्रियाका भाव निहित है। इसलिए माना जाता है कि कलाकार-का जीवन उसकी कलाकृतिमे अंकित हो ही जाता है। रविबाबूके प्रश्नपर कि आपने अपनी जीवनी क्यों नहीं लिखी? शरत्-बाबूने उत्तर दिया था पहले तो मुझे मालूम ही क्य था कि मैं इतना बडा आदमी बन जाऊँगा दूसरे मैं मानता हूँ कि मेरी रचनाओंमें मेरी जीवनी अंकित हो गयी होगी। यह उक्ति भी हमारे अभिप्रायको स्पष्ट कर देती है कि साहित्यमे व्यक्ति-पक्षकी प्रबलता रहती ही है।

---

१ प्रारंभिक रचनाएँ भाग २–पृष्ठ १०३

२ आधुनिक हिंदी कवियोंके काव्य सिद्धान्त–पृष्ठ ४८०

हमारे कविने इस बातको स्वीकार किया है कि जैसे एक व्यक्तिका व्यक्तित्त्व होता है। वैसे ही उसकी अभिव्यक्तिका भी एक व्यक्तित्व होता ही है और जैसे एक व्यक्तिके मित्र-शत्रु रहते हैं, वैसे ही उसकी कलाकृतियोंके भी मित्र-शत्रु बनते हैं पर यह तो खुशीकी बात है क्योंकि इससे साहित्यकी सजीवताका परिचय मिलता है क्योंकि मुर्दोंके विरोधी नही होते। उनके ही शब्दोमे, "जैसे मैं हूँ, वैसे ही मेरी अभिव्यक्ति है। मैं यह कहने नही जाता कि मैं दूसरोसे कितना भिन्न हूँ, कितना उनके समान हूँ, मैंने जीवनमे क्या अपनाया है, क्या छोडा है, कैसा मेरा रहन-सहन है, बोल-चाल है बात-व्यवहार है, क्या मेरे श्रेय-प्रेय हैं, जो मरे चारो तरफ हैं, उनसे मैं क्या पाना चाहता हूँ, उन्हे क्या देना चाहता हूँ, उनसे अपने किन विचार-भावोका आदान-प्रदान करना चाहता हूँ। अंग्रेजीमे कहना चाहूँगा, 'आई लिव देम।' मैं यह सब वर्तता हूँ। इन सब चीजोका सम्मिलित नाम है मेरा व्यक्तित्व। मेरी अभिव्यक्तिका भी एक व्यक्तित्त्व है।

तब जैसे मैंने अपने व्यक्तित्त्वसे अपनी सपूर्ण इकाईसे अपने लिए "अरि, मित्र, उदासी बनाये हैं, वैसे ही मेरी अभिव्यक्ति भी बनाए। यदि मैं समाजके बीच अपने लिए कोई अभिरुचि जगा सका हूँ तो मेरी अभिव्यक्ति भी जगाए।"[१]

हमारे कविने अपनेको कविवर वर्डस्वर्थ एव कविवर पत्तसे अधिक भाग्यवान माना है क्योंकि उनकी रचना बिना किसी लवी चौडी भूमिकाका आश्रय लिये ही लागाको मोह सकी और हमारे कविके लिए एक पाठक वर्ग अनायास ही बिना परिश्रमके तैयार हो गया। इसके कारणपर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं, "उनसे कही अधिक मुझे अपनी कवितामें विश्वास था, क्योकि मुझे अपनेमे अपने मानवमे विश्वास था और अगर कुछ उस कविताके शत्रु बने, कुछ उससे उदासीन रहे तो इसपर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। मेरे भी शत्रु हैं, मुझसे भी उदासीन रहनेवाले लोग हैं। सजीव व्यक्तित्व एव सजीव कवित्वके प्रति

१. आरती और अगारे–भूमिका पृष्ठ ८-९

प्राय इस प्रकारकी प्रतिक्रियाएँ होती हैं। निर्जीवोंकी उपेक्षा की जाती है।"[१]

बाबू भगवतीचरण वर्माकी विचार-धारा भी व्यक्तित्वपर प्रकाश डालनेमे सहायक होगी। उनका कथन है, "उस भावनाका मेरे व्यक्तित्वसे संबंध है। मैं चाहता हूँ कि वही भावना मैं दुनियाके अन्य लोगो तक पहुँचा दूं। थोडी देरके लिए मैं दुनियाको अपनी तन्मयतामे तन्मय कर दूं। (उसे) शब्दोंके द्वारा व्यक्त करके मैंने काव्य-कलाको जन्म दिया।"[२]

जिस कलाकार या साहित्यकारका अहं जितना प्रबल होता है, उतनी ही तीव्रता एवं शक्ति उसके काव्यमे आती है या स्रष्टाके अहंकी शक्ति एवं तीव्रताके अनुपातमे साहित्यमे शक्ति एवं तीव्रता आती है। दुर्बल अहं अथवा किसी भी प्रकारसे दबा हुआ अहं यहाँ तक कि घुला हुआ अहं भी आर्द्रताकी ही सृष्टि कर पाता है शक्तिकी नहीं। बाबू भगवतीचरण वर्माने भी इस बातके समर्थनमे लिखा है, "साहित्य या कलाको प्राणवान बनाता है कलाकार अथवा साहित्यकारके व्यक्तित्वका निक्षेप। प्रखर प्राणवान और महान साहित्यमे साहित्यकारका यह व्यक्तित्व मग्न होता है।"[३]

कविके व्यक्तित्वका उनके काव्यमे अवधारण करनेके लिए हमें उनके जीवनकी प्रधान घटनाओं एवं धारणाओंका परिचय पाना अनिवार्य होगा जिससे उनका साहित्य अनुप्राणित रहा है जिनके परिवर्तनके साथ जीवन भी प्रति पल अपनी दिशा बदलता रहता है और व्यक्ति जहाँ आज है, कल वहाँसे दूर (चाहे आगे या पीछे) पाया जाता है यही नही क्योंकि अस्थिरता जीवन है और स्थिरता मृत्यु। हमारे कवि ने भी इस बातका परिचय अपनी रचनामे दिया है

---

१ आरती और अंगारे—पृष्ठ ९

२ प्रेमसंगीत—दो शब्द—पृष्ठ १४

३ सरस्वती—जुलाई १९५८ पृष्ठ १४.

मैं जहाँ खड़ा था कल उस थलपर आज नहीं,
कल इसी जगह फिर पाना मुझको मुश्किल है।[1]

इस पल-पलपर परिवर्तित ससारमे भाव जगतके परिवर्तनके साथ जीवनकी धारा भी बदलती रहती है। सर्वप्रथम हम अपने कविके जीवनकी प्रधान घटनाओको देखेंगे, फिर उनकी धारणाओकी ओर मुड़ेंगे।

सन् १९३० सत्याग्रह आदोलनकी दृष्टिसे अपना महत्त्व रखता है। गाधीजीके प्रभावमे अनेक छात्र-छात्राओंने स्कूलो-कॉलेजोको प्रणाम कर सत्याग्रहसे प्रणय प्रस्थापित कर लिया था। हमारा कवि जो उन दिनो एम ए का छात्र था, इस आदोलनमे कूद पडा, पढाई रह गयी। कविका हृदय भावुक तो होता है जो 'बूँदके उच्छ्वासको भी अनसुनी नही कर सकता,' फिर यह तो समस्त देशकी पुकार थी। आदोलनके दिन तो किसी विध कट गये और उन्हें महसूस भी नहीं हुआ पर आदोलन ठडा पडते ही उन्होंने अपने आपको जग और जीवनके समक्ष पाया और अनुभव किया कि 'सघर्ष' जीवनका दूसरा नाम है। उनके शब्दोंमे, "महात्मा गाधीका सत्याग्रह आदोलन १९३० मे आरभ हुआ। उस समय मैं एम ए मे पढ रहा था। मैंने युनिवर्सिटी छोड दी। .... . आंदोलन ठडा पडा तो मैंने अपने आपको जग और जीवनके समक्ष पाया– सघर्षमे धँसा, समस्याओमे उलझा, अनुभवोमे डूबता-उतराता। भावनाएँ मुखरित होने लगी। एक दिन मैंने अपनी डायरीमें लिखा– क्या मैं कवि हूँ?"[2]

हमारे कविने अपने कवित्वको सघर्षमे पनपते पहचाना। हमारे कविने इस बातको स्वीकार किया है कि उसके कवि बनानेका एक मात्र कारण यही जीवन सघर्ष रहा है, अन्यथा वह कवि बना ही न होता .—

---

१. मिलनयामिनी–पृष्ठ १९२.
२. निशा-निमत्रण-भूमिका–पृष्ठ ६.

इस दुनियाकी जंजीरोंमें अगर न मैं जकडा जाता,
काव्य कल्पनाके पखोंपर कभी न चढ़कर उड पाता। [1]

"अभाव नित्य ही भावमय हो जाते हैं।" इस तथ्यको हमारे कविने भी स्वीकारा है और कविके जीवनको उसी दिनसे धन्य माना है जब वह यह कहता है, "एक अभावोंकी घडियोंमें भाव भरा मैं बोला।" [2]

इस संघर्षका प्राधान्य कविके समस्त जीवनमें बना रहा है और उनका संपूर्ण साहित्य संघर्षमय जीवनसे अनुप्राणित रहा है। इसी संघर्षने उन्हें कर्म-पथका अनुयायी एवं अमर गायक बना दिया। भले ही यह पुनरुत्थान युगकी प्रधान विचारधारा रही हो, जिसमें कविने अपना जीवन आरंभ किया था, पर, इसका श्रेय भी व्यक्तिगत अनुभूतियोंको ही देना होगा, अन्यथा इस कर्म-युगमें भी, अकर्मण्य लोगोंकी संख्या कम नहीं है। उन्होंने माना ही है कि अगर उनके जीवनमें सुखके फूल बिछे होते तो शायद वे वहीं रुक गये होते, ये तो काँटे (कष्ट) ही हैं जिन्होंने उन्हें गति विधि दी है —

फूल मिलते रोक ही रखते रिझाते,
शूल हैं प्रतिपल मुझे आगे बढ़ाते
इस डगरके शूल भी अनुकूल मेरे। [3]

इसका विशद वर्णन हम 'जीवन-संघर्ष' अध्यायके अंतर्गत कर आये हैं। यहाँ मात्र कविके आत्मविश्वासकी ओर संकेत करना चाहूँगा, जिस आत्मविश्वासने उन्हें नित्य अग्रसर रखा है। वे तो इतना विश्वास रखते हैं कि उनका काम चलना है फिर भला मंजिल क्यों न मिलेगी? अगर जीते जी न मिली तो मरनेपर मंजिल भी ऐसे साधकके चरण चूमनेको दौड पड़ेगी —

---

१ प्रारंभिक रचनाएँ–भाग २ पृष्ठ ४३
२. प्रणयपत्रिका भूमिका पृष्ठ १२
३. मिलन यामिनी–पृष्ठ ४७.

मैं पहुँच न पाऊँ जीते जी अपनी मंजिल,
पर मरनेपर मंजिल मुझ तक पहुँचेगी ही।[१]

इतना ही नहीं, हमारा कवि तो अपने प्रत्येक गीतको विश्वाससे अनुप्रेरित, अनुप्राणित मानता है और उन्हें तो यह भी विश्वास है कि एक-न-एक दिन उनकी वाणी असर करके ही रहेगी और वे जीवनका प्रत्येक कदम दृढ विश्वासके साथ ही इस जीवनकी विषम पगडंडी पर बढाते रहे है, जिससे एक-न-एक दिन, सौंदर्य सृष्टि होगी ही, जीवनकी सुनहली किरण फूटेगी ही.–

मैं गाता हूँ हर गीत मधुर विश्वास लिये,
लहराती अंबरपर, तारोंसे टकराती
ध्वनि पास तुम्हारे एक समय गूँजेगी ही।

मैं रखता हूँ हर पाँव दृढ विश्वास लिये,
ऊबड खाबड तमकी ठोकर खाते-खाते,
इनसे कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही।[२]

कविके इसी आत्मविश्वासका परिचय उनकी समस्त रचनाओंमे मिलता है, जहाँ वे हर मुसीबत एव आंधीसे टकरानेके लिए तैयार रहे हैं, और जिसने निराशामे भी उन्हें आशाके उजालेका दान दिया है और गति दी है।

जीवनमे केवल मधुकी घडियाँ ही तो नही वहाँ हलाहलके घूँट भी पीने ही पडते हैं। हमारे कविके जीवनमे जो सघर्ष १९३० से आरभ हुआ था उसकी चरमसीमा १९३६ मे उनकी पत्नी श्यामाके देहावसानमे पहुँची, पर दर्द भी हदसे गुजरकर दवा बन जाता है। हमारे कविके ही शब्दोंमे, "१९३० के अतसे जो सघर्ष मेरे जीवनमे आरभ हुआ था, उसकी चरमस्थिति १९३६ के अतमें श्यामाके देहावसानमे पहुँची :–

---

१. मिलन यामिनी–पृष्ठ ६४.
२. वही–पृष्ठ ६५.

"सत्य मिटा, सपना भी टूटा।
लेकिन मैं अभी नहीं टूटा था। मैंने अपने जीवनसे खेल किया था। मैंने जीवनके क्रमको विशृंखल किया था। जो कडी मैंने एक दिन झटकेसे तोड दी थी, उसे फिरसे पकडनेका मैंने विश्वास किया।" [1]

कविके इस कालकी कविताओंमें पीडा उमडी पडती है। 'निशा-निमंत्रण', 'आकुल अंतर', 'एकांत संगीत', तथा 'हलाहल' की रचनाओंमें कविके मानसकी उद्विग्नता, बेचैनी साकार हो उठी है। इन रचनाओंपर केवल व्यक्तिगत रचनाएँ होनेका आक्षेप लगाया जाता रहा है पर कविकी मधुबालामें आयी इन पंक्तियोंसे स्पष्ट हो जाता है कि,

रोनेवाला ही समझेगा कुछ मर्म हमारी मस्तीका,
सुन, अश्रु भरी आँखें कहतीं यह राग रंग भी होने दो,
रोदन-गायन दोनोंके स्वरसे सधती जग वीणाकी लय। [2]

और इसमें संदेह नहीं कि दुखकी अनुभूति प्रत्येकके जीवनसे जुडी हुई ही है ऐसे अवसरपर व्यक्तिगत रचनाएँ भी संवेदनशीलताके कारण साधारणीकृत होकर जगकी बन जाती हैं। तभी तो हमारा कवि कहता है –

एक ऐसा गीत गाया जो सदा जाता अकेला
एक ऐसा गीत जिसको सृष्टि सारी गा रही है। [3]

इस मनःस्थितिमें स्थायित्व किसी वस्तुका भी प्राप्त नहीं। मधुके क्षणोंके उपरांत हलाहलके क्षण आये पर हलाहलसे न घबराकर उसका सहर्ष स्वागत करनेपर हलाहलका सारा प्रभाव एवं सारा भय जाता रहा और उसी हलाहलने अमरत्वकी ओर इंगित किया, निराशाकी यामिनी व्यतीत हुई और आशाकी सुनहली किरणें जीवनमें व्याप्त

---

१. निशानिमंत्रण-भूमिका पृष्ठ १०
२. मधुबाला-पृष्ठ ७६
३. सतरंगिनी-पृष्ठ ६१.

गयी, और हमारा कवि भी, अपने उजड़े घोंसलेको फिरसे बसानेके लिए, और अँधेरे घरको आलोकित करनेके लिए, दीप जलानेकी कामनासे प्रेरित होकर आगे बढ़ा :-

नीडका निर्माण फिर-फिर, नेहका आव्हान फिर-फिर। [1]

और,

है अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है? [2]

हमारे कविके जीवनमे पुन मिस् तेजी सूरीका प्रवेश हुआ और २४-१-१९४२ को उनका पाणिग्रहण हुआ। इस युगकी रचनाएँ— सतरंगिनी, मिलन यामिनी, प्रणयपत्रिका—मिलनके माधुर्यकी परिचायक हैं, जो विछोहकी घड़ियोंके अनुभवके उपरात और मधुर बन गया था, जिन घड़ियोंकी हमारे कविने पूरी-पूरी कीमत चुकायी थी -

मैं जलनका भाग अपना भोग आया,
तब मिलनका यह मधुर सयोग पाया,
दे चुका हूँ इन पलोंका मोल पहले। [3]

एक-दो घटनाएँ और भी अपना विशेष महत्त्व रखती हैं, वे हैं उनका कविवर सुमित्रानदन पतका सामीप्य जो १९४० मे और भी अधिक निकट सामीप्यमे परिणत हुआ था। दूसरी घटना है १९४५ मार्चको उनकी माताकी मृत्यु। पर उनकी माताका अस्वास्थ्य काल दिसम्बर १९४४ से लेकर १९४५ मार्च तकका समय भी महत्त्व रखता है, जहाँ हमारे कविने उनकी मृत्यु-शय्याके निकट बैठकर जीवन और मृत्युके बीचके सघर्षको श्यामाकी मृत्यु-अवस्थासे तुलनात्मक रूपमे अध्ययन करनेपर अत्यत महत्त्वपूर्ण माना कि मृत्यु तो भयमे ही व्यापती है और भय मिटा तो मृत्युको चुनौती देनेमे कोई भी समर्थ हो सकता है.-

---

१. सतरंगिनी - पृष्ठ १०५.
२. वही-पृष्ठ ६२.
३. मिलन यामिनी-पृष्ठ ३६.

पहुँच तेरे अधरोंके पास हलाहल कॉप रहा है, देख,
मृत्युके मुखके ऊपर दौड गयी है सहसा भयकी रेख,

मरण था भयके अदर व्याप्त, हुआ निर्भय लो विष निस्तत्व,
स्वय हो जानेको है सिद्ध, हलाहलसे तेरा अमरत्व! [१]

हमारे कविकी इस उक्तिसे भी इस भावनाका परिचय प्राप्त होता है कि कविता व्यक्तिगत अधिक होती है क्योंकि जिस आवेगकी बात कवि कह रहा है, वह आवेग व्यक्तिगत है उसका सामूहिक रूप लक्षित नहीं होता, "कभी कभी कविता लिखनेके लिए हृदयमे आवेग उठता है और वह रोका नही जा सकता।"[२] हमारे कविने सुखकी घडियोको मौन एव दुखकी घडियोको मुखर माना है जिससे उनका, 'कविताकी प्रेरणामें दुखकी प्रधानता रहती है' का विचार स्वय अभिव्यक्त हो जाता है और हम देखते हैं कि हमारे कविने भी शैलेकी इन उक्तिको गीतामे अनिवार्य माना है—

Our sweetest songs are those
That tell of saddest thoughts [३]

हमारा कवि भी अपने गीतोंको अपने हृदयका क्रन्दन ही मानता रहा है, जिससे भी, उनके व्यक्तित्व पक्षकी विशेषताका परिचय मिलता है। यहाँ प्रसगवश केवल एक उदाहरण देकर, मैं आगे बढना चाहूँगा क्योकि कविके पीडा-विषयक भावोंका अवलोकन हम कर आये हैं। देखिए हमारे कविका विचार -

उर क्रंदन करता था मेरा, पर मुखसे मैंने गान किया!
मैंने पीडाको रूप दिया जग समझा मैंने कविता की। [४]

---

१ हलाहल-पृष्ठ १०१
२ वही—कृतिपरिचय पृष्ठ १४
३ *Complete poetical works of Percy Bysshe Shelley*—page 603

४. मधुबाला—पृष्ठ ५८.

मानव जीवनमे अह एव समर्पणका संघर्ष अनादि कालसे चलता चला आ रहा है। इस सघर्षमे वह चैन नही पाता। जहाँ वह अपने अहको रक्षा करता है, वहाँ वह अपनी अलग सत्ता बनाए रहता है, वह अपनेको किसीमे विलीन नही कर सकता। वह एकाकी रहकर मिलनकी आनदानुभूतिसे वचित रहता है, मिलनका आनद वह अनुभव करता है, जिसके मनमे उसके लिए ललक होती है, और वह उसके लिए प्रयत्नशील रहता है, पर अहवादी व्यक्ति यह नही कर सकता। मिलनका आनद तो आत्मसमर्पण करनेवाला ही जान सकता है। समवत. इसीलिए हमारी भक्ति-भावना आत्मसमर्पणकी भावनाकी समर्थक रही है। हमारा मध्यकालीन भक्ति साहित्य इस भावनासे ही अनुप्राणित रहा है जिसके अनेक उदाहरण हम उसकी दोनो (निर्गुण एव सगुण) धाराओमे पाते हैं। मैं उनका वर्णन विस्तार भयसे नही करना चाहता और हिंदी साहित्यका अध्येता उनसे अपरिचित भी तो नही है। हमारा कवि भी आत्मसमर्पणकी भावनाका पक्षपाती है। उनके ही शब्दोमे, "इस स्वार्थी मानवकी, जिसमे मैं भी एक हूँ, चरम अभिलाषा आत्मानद नही, आत्मसमर्पण है।"[1]

हमारा कवि भी अपने मनमे एक अविकल पिपासाका अनुभव आरमसे करता रहा है, और वह पिपासाका ही प्रशसक रहा है, परितृप्तिका नही, जिस पिपासामे ही प्रेमकी स्मृति एव कल्पनासे आनदका नित्य उद्रेक होता रहता है। भक्त कभी मुक्तिकी कामना नही रखता। मुक्त होकर वह अपने भगवानको भूल जाएगा, वह तो नित्य जन्म लेकर, उसकी भक्तिका अवसर चाहता है। इन दोनोमे कोई अतर नहीं है। इच्छित, अपेक्षित वस्तुकी प्राप्तिपर भी मनकी पिपासा तृप्त होनेका नाम नही लेती उसे अनुभव होता है कि उसका अभीप्सित यह नही था कुछ और ही था। और क्या? यह वह स्वय भी तो नही जानता! शायद उस अभीप्सित तक पहुँचकर वह समझ जाए कि उसे जिसकी खोज थी वह, वह स्वय ही था।

---

१. मधुशाला-सबोधन पृष्ठ १३.

हमारे कविने जनगीताके मंगलाचरणमें श्री स्वामीजी महाराजके संबोधनका उल्लेख यों किया है, ' तुम जो लिखते हो, उसका अर्थ तुम नहीं जानते। यह मैंने तुम्हारा स्वभाव कहा है। यानी तुम उपकरण हो – शस्त्र हो, वीणा हो, फूंकनेवाला बजानेवाला दूसरा है। जो तुम स्वभावसे हो, उसके लिए सचेत रहो। तुम उपकरण मात्र बनो, बजानेवाला वचन तुमसे प्रतिध्वनित होगा।''[१]

उपरोक्त पंक्तियाँ जो कविके अर्ध चेतन मनकी जाग्रतावस्थामें उनके मनमें श्री स्वामीजीकी वाणीके रूपमें गूँज उठी थीं विस्तृत व्याख्याकी अपेक्षा रखती हैं। कई बार होता है कि हम किसी बातके ज्ञाता होते हुए भी उसको वाणी देनेमें असमर्थ रहते हैं अथवा वहाँ हमारी वाणी अपने असामर्थ्यका परिचय पाती है और 'गूँगे केरी सरकरी' की उक्तिको चरितार्थ करती मौन धारण कर लेती है। हमारा कवि इस बातका अनुभव करता है कि उसने उसको स्पर्श कर उससे छेड़-छाड़ भी की है, पर अब वह दूर जा बसा है, पर दूर जाकर भी क्या वह मनसे दूर है? नहीं, वह तो भावमय बनकर सारे मानसको प्रभावित किये हुए है। कवि उससे प्रार्थना करता है कि हे मन-बसिया मेरी वाणीमें भी तो मुखरित हो जाओ न! क्या अभी मेरी प्रेमकी पीड़ अधूरी है? अगर अधूरी है तो तारोंको और कस दो न!

तुमने मुझे छुआ छोड़ा भी
और दूर-के-दूर रहे भी

उरके बीच बसे हो मेरे सुरके भी तो बीच बसो ना।
सुर न मधुर हो पाए उरकी वीणाको कुछ और कसो ना।[२]

इन पंक्तियोंसे भी यह ध्वनि निकलती है कि मनकी वीणाका वादक कोई और ही है, जो अंदर बैठा सुर छेड़ा करता है।

---

१ जनगीता–मंगलाचरण पृष्ठ १०

२ प्रणयपत्रिका–पृष्ठ २९

मिलन-यामिनी एवं प्रणयपत्रिकाके अधिकतर गीतोंका आध्यात्मिक पक्ष बहुत ही सजग रहा है। जाने या अनजाने उनमें अध्यात्म पक्ष निखर आया है। अगर कविवर घनानंदकी लौकिक पीर (पीड़ा) से जगी, विरह दाहसे दग्ध रचनाएँ आज आध्यात्मिक एवं भक्ति-भावनाकी रचनाएँ मानी जा सकती है, महादेवीजीकी पीड़ासे प्रसूत लौकिक-अलौकिक रचनाओंमें जब आध्यात्मिक पक्षपर बल दिया जाने लगा है, तब मैं भी कहूँगा कि उपरोक्त गीतोंको कविके व्यक्तिगत जीवन (केवल संसार तक सीमित) से हटाकर व्यापक जीवनके आलोकमें देखना उचित होगा। कुछ संस्कारोंका प्रभाव होता है, और हमारी भारतीय धार्मिक भावनाके अनुकूल ये संस्कार विगत जीवनसे भी संबद्ध बताये जाते रहे हैं, स्वयं भगवद्गीतामें इसका समर्थन पाया जाता है। संभव है, इसी प्रभावसे भी, जाने अनजाने वे गीत लिख गये हों, जिनके आंतरिक अर्थकी, उन्होंने स्वयं कभी कल्पना न की हो, पर उनके मानसकी पिपासा, जो अपना रूप जानती है, और प्रियतमके मूक संदेश भी ग्रहण करती रहती है (भले ही भावात्मक क्यों न हो) अपनी परितृप्तिके लिए कविकी वाणीमें मुखर हो उठी हो।

ईश्वरको बुद्धिके बलपर पाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है और यह मार्ग सर्वसाधारणके लिए भ्रम भटकानेवाला मार्ग है। जब बड़े-बड़े ऋषि-मुनि नेति-नेति कहकर मौन हो गये, या जानकर अनजान बन गये तब साधारण व्यक्ति उसके किस रूपकी आराधना करे? भक्तिमार्गने सर्वसाधारणका मार्ग प्रशस्त किया। भक्ति प्रेम एवं श्रद्धाका योग ही तो है। वह आधार चाहती है, वह आधार पार्थिव हो या अपार्थिव, आवश्यकता है भावनाओंके केंद्रीकरणकी और भावनाएँ किसी भी वस्तुमें केंद्रित होकर उसकी लौकिकताको अलौकिकतामें परिवर्तित कर देती हैं अन्यथा हमारे मंदिरोंकी मूर्तियाँ एवं चित्र, जो नश्वर प्राणियों द्वारा निर्मित हैं, अमर पदके अधिकारी न बनते।

बुद्धि एवं ज्ञानमें अहंकी प्रधानता रहती है, और वहाँ समर्पणका भाव जग ही नहीं सकता। वहाँ तो बुद्धिवादी जीव इसी अभिमानमें

रहता है कि मैं तुम्हें ढूँढ ही लूँगा पर व्यक्ति, जब अपने बुद्धिके बल पर उसके सामीप्यमे असमर्थ रहता है, तब उसे पछतावा होता है, (बुद्धिसे पहचाना भले ही जाए, पर पहचान मात्र सामीप्यका अधिकार नही देती। मैं उसे जानता हूँ" और ' वह मेरा है मे आकाश-पातालका अतर है। जहाँ भक्त कहनेका साहस रखता है कि ' भगवान मेरा है , वहाँ ज्ञानी केवल उसे जाननेका दावा ही रख सकता है।) तब वह अपने आपको भावनाओंके बल्पर प्रीतमको समर्पण होकर ही सब कुछ भर पानेकी इच्छा, व्यक्त करता है। कविके शब्दोंमें

जान समझ मै तुमको लूगा—
यह मेरा अभिमान कभी था
अब अनुभव यह बतलाता है—
मै कितना नादान कभी था
याग्य कभी स्वर मेरा होगा
विवश उसे तुम दुहराओगे ?

बहुत यही है अगर तुम्हारे अधरोंसे परिचित हो जाऊँ।
एक यही अरमान गीत बन प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊँ।[१]

अगर उस प्रियतमका परिचय देना अनिवार्य बन जाए तो बडी ही कठिन स्थिति निर्माण हो जाती है। महादेवीजी भी तो बतानेमे असमर्थ होकर कहती हैं जब तुम मुझमे फिर परिचय क्या ? हमारा कवि भी कहता है कि मेरे जीवनमें मेरे स्वप्नोंमे मेरी वाणी मे यहाँ तक विश्वके कणकणमें तुम ही तो हो, अगर तुम न होते तो मेरी वाणी भी मुर्देकी तरह मूक रह जाती फिर नाम लेनेकी क्या बात है ? क्या इतना यथेष्ट नही कि मेरी आशाएँ निराशाएँ पिपासा सब ही मैंने तुम्हें अर्पण कर दिये हैं —

नाम तुम्हारा ले लू मेरे
स्वप्नोंकी नामावली पूरी,

---

१ प्रणयपत्रिका—पृष्ठ ३८

तुम जिससे संबद्ध नहीं वह
काम अधूरा, बात अधूरी
तुम जिसमें डोले वह जीवन,
तुम जिसमें बोले वह वाणी,

मुर्दा मूक नहीं तो मेरे सब अरमान, सभी अभिलाषा।
अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।[1]

हमारा कवि तो उनके रंगमें रंग जाना चाहता है, और यही तो होली होगी, कि मेरी पहचान मैं नहीं, तुम बन जाओ। जिस रंगकी खोजमें कबीर भी लाल होकर रह गये और खोज पूरी होकर भी अधूरी अथवा अधूरी होते हुए भी पूरी रह गयी थी हमारा कवि भी तो यही चाहता है कि तुम मुझे अपनेमें रंग डालो, ताकि मेरे मानससे प्रेम, रूप, जीवन और यौवनके गीत फूट पड़ें, और ये, मनसे निकलकर, मनको प्रभावित कर देंगे ही –

तुम अपनेमें रंग लो तो मैं
बीती बात भुलाऊँ,
प्रेम, रूप, जीवन, यौवनका
सबको गीत सुनाऊँ,
अंतरमें वह पैठ सकेगा
जो अंतरसे निकलेगा,
मेरी तो मेरे मानसकी बोली है।
तुम अपने रंगमें रंग लो तो होली है।[2]

और उस सम्मोहनको समझा भी तो नहीं जाता, केवल महसूस ही किया जाता है, और फिर, फिर तो अपनेको रोकना असंभव हो जाता है। हमारा कवि भी तो कहता है –

खींचती तुम कौन ऐसे बंधनोंसे
जो कि रुक सकता नहीं मैं।[3]

---

१. प्रणयपत्रिका–पृष्ठ ४१.
२. वही–पृष्ठ ४९
३. मिलनयामिनी–पृष्ठ १२६.

और इस मौन निमंत्रणके लिए कवि जीवनके विश्वके समस्त बंधन, सम्मोहन तोडनेको तैयार है। वह तो अपने प्रियतमके मौनमें भी संदेशा ही पाता रहा है—

मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेसे।[1]

फिर भी कवि समझ नहीं पाता कि आखिर उस मौन प्रियतममें क्या है जिसने ऐसे सम्मोहन जालमें उसे बाँध लिया है —

क्या तुममें ऐसा जो तुमसे मेरे तन मन प्राण बंधे से।[2]

चाहे जो हो, अनायास ही सही, हमारे कविने सूफी सम्प्रदायकी, तीन अवस्थाओंका, और वह भी अनायास ही, सहज भावसे, क्रमशः अपने काव्यमें अंकन किया है। (१) प्रेमकी पीर-दर्दी-मस्ती, (२) फना, (३) बका। हो न हो मेरे विचारमें यह उस सूफी संत (सैयाम) का ही प्रभाव है जो पुनः [illegible] काम करता रहा है, जिसके विषयमें कविने अपने प्रियतमको सम्बोधन करते हुए कभी (१९३३ में) लिखा था "क्या तू [illegible] एक मदिरा नहीं जिसके लिए कितने दिनोंसे मैं एक उमर खय्याम बन गया हूँ?"[3] यहाँ 'कितने दिनों' शब्द भी दृष्टव्य है जो अपनेमें कितने जीवनों- कितने जन्मोंका [illegible] लिए हुए है। ... (१) शरीयत (२) तरीकत (३) हकीकत (४) मारिफत नामसे जानी हैं। 'सैयामकी मधुशालामें शरीयतावस्था ('मिट्टीका पात्र' सैयामकी प्रमुख नामसे होती है) मधुशालीन' रचनाओंमें उनकी तरीकतावस्था 'विरहकालीन' रचनाओंमें उनकी हकीकतावस्थाका (जिसमें कविपर जीवनकी हकीकत – सत्य प्रकट होने लगा है) तथा 'मिलनकालीन' रचनाओंमें उनकी मारिफतावस्थाका सहज बोध होता है। कविने इस ओर कोई प्रयत्न नहीं किया यह उनकी आत्माकी सहज अभिव्यक्ति है।

---

१ प्रणयपत्रिका पृष्ठ ४२

२ वही–पृष्ठ ४२

३ सैयामकी मधुशाला–संबोधन पृष्ठ २.

प्रेम निस्संदेह एक आग है, पर उस आगको तो सराहा ही जाता रहा है, उसके अभावकी ही निंदा की जाती रही है। मलिक मुहमद जायसीने उस हृदयको धन्य माना है जहाँ प्रेमाग्नि रह सकती है:—

> मुहमद चिनगी प्रेम कै सुनि महि गगन डेराइ।
> धनि बिरही औ धनि हिया, जहँ अस अगिनि समाय॥ [1]

हमारे कविने भी अंतरमें प्रेमाग्नि बसानेवालेको धन्य माना है और प्रेमहीन व्यक्तिको मृतवत्, जो केवल चितापर फूँके जानेका अधिकारी रह जाता है –

> वह भागी है दर्द बसाए रह सकता है जिसका अन्तर,
> जो इससे वंचित हैं उनको फूँको फूस चितापर धरकर। [2]

ऊपर हमने कुछ वैयक्तिक पक्षको स्पष्ट करनेवाले प्रसंगोंका अवलोकन किया है। अतः यह सिद्ध हो ही जाता है कि उनकी रचनाका मूल स्वर व्यक्तिगत अनुभूतियोंका उल्लेख रहा है क्योंकि वैयक्तिक कवितामें ही आत्मानुभूतिका विशेष स्थान रहता है। कविके इस कथनसे यह भावना कुछ और भी स्पष्ट हो जायगी — 'युग-युगकी घटनाओं, वस्तुस्थितियों, विचार-धाराओं तथा परम्पराओंका कलाकृतियों पर प्रभाव पड़ता है इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। परन्तु कलाकारका निजी व्यक्तित्व भी एक महत्ता रखता है। सच तो यह है कि अपने व्यक्तित्वमें कुछ विशेषता रखनेके कारण ही वह कलाकार होता है। फिर युग भी व्यक्तिको प्रभावित करके ही कलाका प्रभाव दिखला सकता है।' [3] इसका ज्वलंत उदाहरण हम अपने कविकी आलोचना-पर जाग्रत प्रतिक्रियात्मक रचनाओंसे मिलता है। उनके साथ ही वे रचनाएँ, हमारे कविके व्यक्तित्वके सबल पक्षका परिचय भी हमें देती हैं कि, किस तरह वह निर्भीक रहकर रचना करता चला गया हो, मानो उसको युगकी आलोचनाकी पर्वा ही न रही हो, इससे उनके

---

१ जायसी ग्रंथावली–पृष्ठ ८७.

२ प्रणयपत्रिका–पृष्ठ ५६

३. पल्लविनी-एक दृष्टिकोण–पृष्ठ ६.

कविताके विषयमे, 'स्वात सुखाय' की भावनाका भी परिचय मिलता है जैसा कि उन्होंने मधुशालाकी भूमिका 'सबोधन" में कहा है। "दीन हीन, अकिंचन भक्त यह विचार ही कब अपने मनमे ला सकता है कि वह भगवानके चरणोंमे कोई ऐसी वस्तु उपस्थित कर सकता है, जिससे वे प्रसन्न हो सके। यह तो भगवानके चरणोंमें अपनी भेंट अपने हृदयकी सतुष्टिके लिए ही चढाता है। भगवानके चरणोंमे वह कुछ अपना रखकर अपने ही हृदयका भार हल्का करता है – एक बोझ उतारता है।" [१] इसके समर्थनमे कविकी निम्न पक्तिको देखिए —

कवि अपनी विह्वल वाणीसे अपना व्याकुल मन बहलाता। [२]

और यह तो स्वयम्सिद्ध बात है कि जीवनका निकटसे देखने-वाला साहित्यकार कृत्रिमताका पोषक नही होता, उसकी रचनामे स्वात सुखकी प्ररणा स्वत निहित रहती है। अब हम अपने कविकी कुछ प्रतिक्रियात्मक उक्तियोंको देखेंगे। उनकी यह प्रतिक्रिया मधुबालासे ही आरभ हो जाती है। उन प्रतिक्रियात्मक रचनाओंमें वास्तवमें हमारे समाजका सुन्दर चित्र अकित हो गया है कि किस तरहकी आजके हमारे समाजकी व्यवस्था है। मधुबालामे ही कविने अपने ऊपर लगाये आरोपका परिचय दिया है —

क्या कहती ? दुनियाको देखो '
दुनिया देती लानत मुझको,
ह कहती फिरती गली गली
मदिरा पीनेकी लत मुझको
दुनिया तो मुझसे है रूठी
है तुली हुई बद करने पर,
गगाजल जब म पीता था
कब की उसने इज्जत मुझको ? [३]

---

१ मधुशाला-संबोधन-पृष्ठ ११
२ एकांत संगीत-पृष्ठ ६८
३ मधुबाला-पृष्ठ ८०

'हलाहल' में भी कविकी प्रतिक्रिया समाजकी कलई खोलने-पर उतरी हुई है कि न उसको कुछ श्रेय है न प्रेय', वह तो मात्र हरेकको राहमें रोड़े अटकानेमें ही आनदानुभव करता है। कविने हसन बिन मन्सूरका नाम भी जोड दिया है जो महान् सूफी सन्त था पर दुनियाने उसे फाँसी चढा दिया —

चलाई तुमने पत्थर ईंट देखकर मदिरा मेरे हाथ,
तुम्हारे हाथ नहीं है शान्त हलाहल गो अब मेरे हाथ,
तुम्हें है कुछ भी हेय न श्रेय, हुए तुम आदतसे मजबूर,
असाधू हूँ मैं, लूँ मैं मान मगर था साधू तो मसूर। [१]

इसी भावनाका परिचय कविकी मिलन-यामिनीमें भी मिलता है पर यहाँ तक आते-आते हमारे कविने अपनेको सयत रखनेकी कला पा ली है और सभवत यह सोचते हुए कि 'बदनाम हुए तो क्या नाम न हुआ' और देखते हुए कि इन विरोधी भावनाओंने कविकी रचनाको और भी लोकप्रिय बना लिया था, वह उन पत्थरोंको फूल समझकर उनका स्वागत करता है.—

जग मुझे टेढ़ी नजरसे देखता है,
और, लो, पाषाण मुझपर फेंकता है,
जो उसे पत्थर, वही तो फूल मेरा। [२]

पर हमारे कविने उन आलोचनाओंकी पर्वाह नहीं की। मनके तारोंको कोई छेड चुका ही था, अब ध्वनिका निकलना सहज स्वाभाविक था, अत वह तो कह ही देता है कि मैं तो मनमौजी हूँ जो आया, किया, यह बावरी दुनिया क्या रोकेगी :—

कब भला ससारसे डरता रहा मैं,
मौजमें आया वही करता रहा मैं,

---

१. हलाहल—पृष्ठ ४४
२. मिलनयामिनी—पृष्ठ ४७.

बावरी किसको बरजना चाहती है,
प्राणकी यह बीन बजना चाहती है। [१]

हमारा कवि जगके निर्णयकी कोई पर्वाह नहीं करता वह तो जीवनकी यात्रामें बेरोक-टोक इधरसे आकर उधरसे निकल जानेका पक्षपाती है —

जग दे मुझपर फैसला उसे जैसा भाए
लेकिन मैं तो बेरोक सफरमें जीवनके
इस एक और पहलूसे होकर निकल गया। [२]

रसिक शिरोमणि बिहारीकी उक्ति 'किते न नर औगुन करत नै व चढ़ती बार' के अनुरूप ही हमारा कवि भी मानता है कि जवानीमें दीवानापन होता ही है और कदम इधर-उधर सबके ही चले जाते हैं। दुनियामें न जाने कौन ऐसा है जो दूधका धुला — पवित्र हो जिसने पाप न किया हो —

चली मस्त शचि नाम पथपर
किसका राम कहानी
कुछ रवान कर ही जाती
धन्ता उमर जवानी
यहाँ दूधका धोया कोई हो तो आगे आए। [३]

इन पंक्तियोंकी खैयामकी इन पंक्तियोंसे तुलना कीजिए

ना कर्दे गुनाह दर जहान कीस्त बिगू
आँ कस कि गुनह न करद चू ज़ीस्त बिगू।

(What man on Earth has sinned not ? Tell me pray,
How lives the man that sins not ? Tell me pray)[४]

---

१ मिलनयामिनी–पृष्ठ ३२
२ वही पृष्ठ १९३
३ प्रणयपत्रिका–पृष्ठ १०४.
४ मौलाना शिबली और उमर खैयाम–पृष्ठ ६९

हमारे कविने परम्परागत प्रतीक शैलीको अपनाया है। पर कुछ लोग जो बालकी खाल निकालनेमे आनन्दानुभव करते हैं वे उसके भीतरी अर्थ तक या तो पैठना नही चाहते, या पैठ नही सकते, और बातका बतगड बना देते हैं। इस बातको स्पष्ट करनेके लिए हमारे कविने, पौराणिक अक्षय वृक्षकी गाथाका आधार लिया है। और श्री काटजूसाहबको सबोधित करते, मानो पूरे विद्वन्मण्डलको ही सबोधित करते हुए लिखा है —

वह नहीं जो नष्ट होता प्रलयमें भी,
यह अटल विश्वास है
जिसका सहारा सृष्टिके भी,
सृष्टिकर्ताके लिए भी है जरूरी।
कौन रोपे, कौन काटे, कौन खोजे !
रूपकोंके बोल समझेंगे नहीं तो
मुझे-मैंने चूंकि मधुशाला रची है—
कभी खोजेंगे शहरकी हौलियोंमें,
और सोचेंगे कभी मोरारजी
मेरे गलेको घोंट देंगे। [1]

और जैसा कि हमारे कविका कथन है कि "उम्र ही मेरी चुकी है बीत जीवन-विश्वसे लडते-झगडते।" [2] और इस लडाईमे जीत किसकी हुई है, यह इन पक्तियोंसे विदित हो जाएगा कि किस तरह दुनिया बुझती मशालें लेकर कविको जलाने दौड पडी थी— वे लडना तो चाहते थे पर उनके दिल बुझे-बुझे-से थे। कवि अपने हृदयकी ज्वालाको धन्यवाद देता है, जिसने उनके बुझते दिलों — बुझती मशालो-को भी प्रदीप्त कर दिया जो केवल विजय ही नही, किसीके मनको अपने प्रभावसे वशीभूत करनेकी परिचायक है —

---

१. त्रिभगिमा—पृष्ठ १७५–७६
२. आरती और अगारे— पृष्ठ २१७

हाथ ले बुझती मशालें, जग चला मुझको जलाने
जल उठी छू कर मुझे वे धन्य अन्तर्दाह मेरी ! [1]

भले ही हमारे कविको उनके कथनानुसार ' गली-गलीका ताना मिला हो ' [2] पर उन्हें विश्वास है कि जब विश्वके रंगमंचका पर्दा गिरेगा तब वे ही मुख्य नायककी तरह उभरते नजर आएँगे —

किन्तु जब पर्दा गिरेगा
मुख्य नायक-सा उभरता मैं दिखूँगा। [3]

काव्यके वर्ण्य विषय

हम जब अपने कविके वर्ण्य विषयपर दृष्टिपात करते हैं तो उनकी व्यापकता देखकर चकित हो जाते हैं। जीवन (व्यापक अर्थमें) का शायद ही कोई पहलू हो जो उनकी लेखनीके स्पर्शसे चमक न उठा हो। इसका कारण है उनका व्यापक दृष्टिकोण एवं अपने कविकी शक्तिमें विश्वास। 'जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि' की उक्तिको उन्होंने दुहरे अर्थमें ग्रहण किया है कि कवि किसीके भी अंतसमें पैठकर उसकी भावनाओंको जान लेता है पर साथ-ही-साथ वह अपना संदेशरूपी प्रकाश भी प्रत्येक मानसमें बिखरता रहता है उसकी पहुँच हर जगह है —

रवि जहाँ जाता नहीं है
उलमें जाता वहाँ मैं।
कौन-सी एसी किरण है
किस जगह है
जो कि मेरे एक संकेतपर
सब मान-लज्जा
कर निछावर
मुसकराकर,

१ मधुकलश–पृष्ठ ६६
२ प्रणयपत्रिका–पृष्ठ २६
३ त्रिभंगिमा–पृष्ठ ९४

मैं जहाँ चाहूँ वहाँपर
यह बिखर जाती नहीं है ? [1]

प्यार, जवानी और जीवनके जादूको सदा सर्वदा माननेवाले हमारे कवि [2] का विचार है कि इस जड जगतमे रहते हुए भी कवि अपनेमे कुछ ऐसी विशेषता रखता है कि वह अपनी चेतनासे गिरती हुई बूँदके उच्छ्वासको भी अनुभव करता है और अपनी चेतना भरकर उस आहको वाहमे बदल देता है —

जड जगतमें वास कर भी जड नहीं व्यवहार कविका,
भावनाओंसे विनिर्मित, और ही ससार कविका,
बूँदके उच्छ्वासको भी अनसुनी करता नहीं यह,
किस तरह होता उपेक्षा-पात्र पारावार कविका,
विश्व पीडासे, सुपरिचित हो तरल बनने, पिघलने
त्याग कर आया यहाँ कवि स्वप्न लोकोंके प्रलोभन।

कवि तो मूक जगतकी वाणी है और मूक लोगोंकी गाथाको वाणी देकर उसे बोलना सिखाकर उसकी कथासे जीवनको प्रभावित करना ही उसका महत्त्वपूर्ण कार्य है —

कर्म कविताका नहीं इससे बडा है
कुछ अबोलोंको बोला दे,
कर्म कविका भी नहीं इससे बडा है
कुछ अबोलोंकी कथाओंसे
किसीके प्राण, मन,
जीवन शिराको
थरथरा दे। [4]

---

१. बुद्ध और नाचघर–पृष्ठ १०७ १०८.
२. मिलन यामिनी–पृष्ठ ६६
३ मधुकलश पृष्ठ ७६
४. त्रिभंगिमा–पृष्ठ १६६

हमारे कविने चाहे कितनी भी ऊँची उडान भरी हो पर वे भारत-भूमिको नहीं ही भूले । उनकी प्रारंभिक रचनाओंमें ही उनकी भारत-भूमिके प्रति ललक के दर्शन होते हैं —

काव्य कल्पनाके डैनोंपर चढ मैं उडता जाऊँ
बहुत दूर जाकर भी अपने भारतको न भुलाऊँ । [१]

हमारे कविपर कल्पनाजीवी होनेका आक्षेप लगाया जाता रहा है, पर उन्होंने भूमिकी ओर अपना अटूट आग्रह दिखाया है और इस भावनाकी परिचायक अनेक कविताएँ उनका रचनामें मिलती हैं और वे तो मानते हैं कि,

आसमानी स्वप्न ललचाते उसे हैं
भूमि जिसको जन्म गोदी । [२]

राष्ट्रप्रेम एव भूमिप्रेमकी उनकी स्वतन्त्र रचनाएँ बगालका काल, सूतकी माला खादीके फूल एव धारके इधर-उधर तो हैं ही पर अन्य रचनाओंमें भी उनका यह भाव-जगत सजग रहा है । 'बुद्ध और नाचघर' की 'चोटीकी बरफ' कविता 'त्रिभगिमा' की 'गगाकी लहर', 'माटीकी महक', 'कवि और वैज्ञानिक' 'मिट्टीसे हाथ लगाये रह', 'मैंने ही न देखा', 'जादूगरका जादू', 'चिडिया और चुरुगन' टूट सपने', अमरबेली' 'अक्षयवट', 'चेतावनी', 'मिट्टीका द्रोणाचार्य', १९६० की दीवाली' और 'गणतंत्र दिवस कविताएँ तथा 'आरती और अगारे की कुछ कविताएँ जहापर कविने अपन गायन-काव्यका लक्ष्य ही भूमिको 'स्वर्गादपि गरीयसी बनानेकी भावना, व्यक्त की है —

एक गीत ऐसा मैं गाऊ भूमि लगे स्वर्गोंसे प्यारी । [३]

हमारे कविने प्यार जवानी, जीवनके जादूका प्रभाव अपने ऊपर हमेशा माना है, इसलिए उनकी रचनाम प्यार (भौतिक एव आध्यात्मिक

---

१ प्रारभिक रचनाएँ भाग २–पृष्ठ ४६
२ प्रणयपत्रिका–पृष्ठ १०६
३ आरती और अगारे–पृष्ठ १२५

यौवनके उन्मादमय क्षणोंके गीत एव जीवनके गीत अधिक मात्रामे ही गाये हैं । हम यहाँपर अपने कविके प्रेम-सबधी विचारोपर थोडा-सा विचार करेंगे ।

प्रेम व्यक्तिका मार्गदर्शक बनता है, उसमे विकासका कारण बनता है, उसके बलपर ही मजिल मिलती है, पर यह तो आग है, उस आगको हृदयमे बसानेवाला, अपनेको जलानेवाला ही तो ज्योति बिखेरनेमें समर्थ होता है, जैसे हमारे बापू —

स्नेहमें डूबे हुए ही तो हिफाजतसे पहुँचते पार,
स्नेहमें जलते हुए ही कर सके हैं ज्योति-जीवनदान । [१]

प्रेम ही तो वह आग है जिसमे पडकर व्यक्ति काचन बन जाता है और उसकी कीर्तिरूपी सुगध जल, थल व्योममे विचरने लगती है -

जब मिट्टी करती प्यार पलट कचन बन जाती है,
जिस थलपर धरती पाँव सुरभि उसपर फैलाती है,
जो ध्वनित धरा, प्रतिध्वनित गगन-मडलसे होते है,
उस मिट्टीसे ऐसे व्यापक उद्गार निकलते हैं । [२]

जहाँ हमारे कविवर पत मानते हैं कि "कहाँ नहीं है प्रेम साँस सा सबके उरमें" वहाँ हमारा कवि मानता है कि यह तो बडी तपस्याके पश्चात मिला हुआ वरदान है –

बडे तपसे मिला वरदानका
यह मेह, स्वर्गिक स्नेह ! [३]

हमारा कवि मानता है कि जहाँ प्यार पूर्ण मानवकी निशानी है वहाँ प्रेम पूर्णतादायक भी तो है –

---

१ सोपान (खादीके फूल)-पृष्ठ १५४
२ प्रणयपत्रिका-पृष्ठ ८९
३ बुद्ध और नाचघर-पृष्ठ ३८

प्यार पूर्णता माँगा करता है, यह सच है,
यह भी सच है, प्यार पूर्णता दे सकता है। [१]

जहाँ प्रेम नही, जो प्रेममें प्राणोकी बाजी न लगा सका, जहाँ प्रेम-रस न बहा उसे ही नरक समझना चाहिए –

सका न खेल जो कि प्राणका जुआ।
डरा-मरा न स्नेहने जिसे छुआ।
जहाँ बहा न रस वहीं नरक हुआ। [२]

प्रेमी तो मिलनेमे आनदानुभव करता है, आत्मसमर्पणमें वह सब कुछ भर पाता है, वह तो अपने आपको लुटाना ही जानता है और हमारे कविका कथन है कि –

मैं तो केवल इतना सिखला सकता हूँ,
अपने मनको किस भाँति लुटाया जाता है। [३]

ससारमे आदमी अपने प्रियतम प्रेयसीको छोडकर भला किस चीजकी अभिलाषा रख सकता है? वह तो उसके समक्ष ससारको भी ठोकर मार सकता है –

ससार मिले भी तो क्या जब अपना अतर ही सूना हो,
पाना क्या शेष रहे फिर जब मनको मनका उपहार मिले,
है धन्य प्रणय जिसको पाकर मानव स्वर्गोको ठुकराता,
ऐसे पागलपनके अवसर कब जीवनमें दो बार मिले। [४]

हमारा कवि तो कहता है कि 'जानता हूँ प्यार उसकी पीरको भी' [५] जिसमे 'शूल तो जैसे विरह वैसे मिलनमें' [६] बना रहता है सम्भवत इसलिए कि,

---

१ आरती और अगारे–पृष्ठ २५४
२ मिलनयामिनी–पृष्ठ २२९
३ वही–पृष्ठ १८७
४ वही–पृष्ठ १७६
५ वही–पृष्ठ ४८
६ वही–पृष्ठ ४९

आभास विरहका आया था मुझको मिलनेकी घड़ियोंमें,
आहोंकी आहट आयी थी मुझको हंसती फुलझड़ियोंमें,
मानवके सुखमें दुख ऐसे चुपचाप उतरकर आ जाता
है ओस ढुलक पड़ती जैसे मकरंदमयी पंखुरियोंमें। [१]

प्रेम और वासनामें अंतर बताते हुए कवि कहता है :—

प्यास होती तो सलिलमें डूब जाती,
वासना मिटती न तो मुझको मिटाती,
पर नहीं अनुराग है मरता किसीका;
प्यारसे प्रिय जी नहीं भरता किसीका। [२]

प्रेम अमिट पिपासा है पर वासना नही, वासना अगर अमर होती तो आदमी उसमे मर मिटता, प्रेम तो वह धन है जिसकी खोज मनुष्य शरीर, प्राणो, हृदय, बुद्धिसे करता रहता है और उसे पाकर और कुछ पानेकी अभिलाषा शेष नही रह जाती :—

देह, प्राणोंकी, हृदयकी, बुद्धिकी सब
हलचलोंमें प्यारकी ही खोज होती।
प्यारसे आगे नहीं कुछ भी कहीं है। [३]

हमारे कविने भी ढाई अक्षरोकी अमर महिमाका गान त्रिभंगिमा-की 'ढाई अछर', 'मैंने ही न देखा', और 'दीपक, पतिंगे और कौए' कविताओमे किया है। हमारा कवि तो प्रेमको मनुष्यका जन्मसिद्ध अधिकार मानता है क्योकि मनुष्य ही प्रेम करता है, पशु प्रेम नही करते, पर जिन लोगोमे सद्बुद्धिका अभाव है, जो अशक्त है वे इसे दुर्गुण बताते हैं :—

पशुओंने कब प्यार किया है, कब ये सुन्दरता पर बिखरे ?
शक्ति सुरुचि दोनोंसे वंचित ही इनको दुर्गुण बतलाते। [४]

---

१. मिलनयामिनी–पृष्ठ १७७
२. मिलनयामिनी–पृष्ठ ५०
३. त्रिभंगिमा–पृष्ठ ८१
४. प्रणयपत्रिका–पृष्ठ ५९

डॉ फ्रायड मानते हैं कि नारीको देखकर नरमें और नरको देखकर नारीमें जो ललक और आकर्षण उत्पन्न होता है उसे दबाना नहीं चाहिए क्योंकि यौन आवेग दबाये जानेपर मनमें कुण्ठाओंको जन्म देते हैं। अतः प्रगतिवादी साहित्यमें नारी और नर सबंधी इन काम-वासनाओंको विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। इसका एक कारण और भी है कि जब प्रगतिवाद भौतिकतामें विश्वास रखता है तो वह भौतिक आनंदको ही जीवनका लक्ष्य मानता है तथा उसकी व्याख्या या आख्यानको दोष नहीं समझता। अतएव प्रगतिवादी स्वस्थ मानव प्रवृत्तियोंको जिनमें मुख्य क्षुधा और काम हैं प्राकृत रूपमें व्यक्त करनेसे नहीं घबडाता। कविवर सुमित्रानंदन पंतकी 'ग्राम्या' की द्वद्व प्रणय कवितामें कुछ ऐसी भावना दिखायी देती है –

> धिक रे मनुष्य तुम स्वस्थ शुद्ध निश्छल चुम्बन
> अंकित कर सकते नहीं प्रियाके अधरोंपर !
> क्या गुह्य क्षुद्र ही बना रहेगा बुद्धिमान
> नर नारीका वह सुन्दर स्वर्गिक आकर्षण।

अब हमारे कविकी इन पंक्तियोंको देखिए, बिल्कुल वही भाव है–

> प्रेयसीको बाहुमें भर विश्व, यौवन, काल गतिसे
> सर्वथा स्वच्छंद होकर
> आज प्रेमी दे न सकता हाय, चुम्बन प्यार
> व्याकुल आज हूं संसार।[१]

काव्य शिल्प/कला पक्ष

कविवर 'बच्चन' ने अधिकतर गीत ही लिखे हैं और गीत विषयक अपने विचार भी व्यक्त किये हैं। उनके शब्दोंमें, "मैं प्रायः गीत ही लिखता रहा हूँ। गीतोंकी एक अपनी कमाई होती है—भावों विचारोंकी, और एक हद तक अभिव्यक्तिके उपकरणोंकी भी और उनका आनंद लेनेके लिए किसी टीका टिप्पणीकी आवश्यकता नहीं

---

१ धारके इधर-उधर–पृष्ठ २९

होती। प्रत्येक गीतको सर्व-स्वतंत्र, अपराश्रित और अपनेमें ही परिपूर्ण मानकर प्रायः पढा या गाया जाता है और उसका रस लिया जाता है। अब यह गीतकारका काम है कि गीतोंकी परिमित परिधिके भीतर ही भावोंका उद्रेक और विकास कर उन्हें वांछित परिणति तक पहुँचा दे।"[१]

गीतके विषयमे कविने प्रणयपत्रिकाकी भूमिकामे लिखा है, "गीतकी सबसे बडी खूबी यह है कि वह अपने आपमे परिपूर्ण है। उसके लिए किसी सदर्भ प्रसंगकी आवश्यकता नही है। जीवनके असंख्य तारोंवाली बीणापर गीतकार केवल एकको चुनकर उसपर ठुनकी लगाता है। उसकी सफलता इसीमे है कि उसकी प्रथम ठुनकीसे श्रोताका हृदय प्रतिध्वनित हो उठे और उसी तारपर इनीगिनी ठुनकियाँ देते हुए, कम-से-कम समयमे, वह एक पूरी गत बजा दे। गीत समाप्त हो जाए पर उसकी गूँज श्रोताके कानोमे बस जाए, और बहुत-सी अनुगूँजें जगाएँ। आदर्श गीत सदाको कानोंमें बस जाता है। जग-जीवनकी विभिन्न हलचलोंके बीच वह ध्यानसे भले ही उतर जाए पर सहसा यदि उसकी याद आ जाए तो वह अपने पूरे आवेगसे फिर गूँज उठे।"[२]

गीतके ही विषयमे कवि लिखता है, "गीत वह है जिसमे भाव, विचार, अनुभूति, कल्पना, एक शब्दमे कथ्यकी एकता हो और उसका एक ही प्रभाव पडे।"[3]

और भी, "गीतोंका सबसे परिपूर्ण अजस्र, सुन्दर और निर्मल स्रोत तीव्रानुभूतियाँ हैं — अनुभूतियाँ जो नस-नाडियोमे चले, रक्तमे डोले, हृदयमे धडके, विवशतामे मुँह खोले।"[४]

---

१. आरती और अंगारे-भूमिका–पृष्ठ ११
२. प्रणयपत्रिका–भूमिका पृष्ठ ११-१२
३. त्रिभंगिमा–भूमिका पृष्ठ ९.
४. कवियोंमे सौम्य संत–पृष्ठ १५४

उपरोक्त बातोके आधारपर हमारे कविने गीतिकाव्यके कविके विचार सक्षपमे ये माने जा सकते हैं कि (१) गीत गेय हो, (२) गीतमे किसी एव भावको स्वतत्र एव परिपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान की गयी हो, (३) गीतके अध्ययन या श्रवणसे भावुक व्यक्तिको रस अथवा आनदकी उपलब्धि होती है, (४) गीतमे तीव्रनुभूतिके कारण आवेग तथा प्रवाह हो। हमारे कविने विशेष रूपसे पीडाको ही गीतोका आधार माना है अथवा कुछ आवेगपूर्ण भावनाओकी अभिव्यक्तिको ही और इस विषयमे उनकी उक्तियाँ उनके सपूर्ण साहित्यमे यत्र तत्र बिखरी मिलती हैं जिनपर हम ऊपर विचार कर आये हैं। यहाँ मुझे सिर्फ इतना कहना है कि जो कवि अपनेमें इतना जागरूक रहा हो वह अवश्य ही सफल गीतकार माना जा सकता है और हमारे कवि निस्सदेह एक सफल गीतकार हैं। ये गीत विषयक परिभाषाएँ उन्होंने अपनी रचनाओकी विशेषताके आधारपर दी हैं या काव्यशास्त्रके अध्ययनसे, पर वे समस्त गुण उनकी रचनाओमे उपलब्ध हैं।

हमारे कविने भावानुकूल छद-योजनाको काव्यका स्वाभाविक गुण माना है। हमारे कविको आत्मविश्वास है कि जीवनकी अनुभूतियो-पर भरोसा रखनेवाले व्यक्ति उन अनुभूतियोंपर ही अभिव्यक्तिका रूप निर्धारित करनेका भार छोड सकते हैं जैसा कि उन्होने स्वय किया है। उनके ही शब्दोंमें, 'जीवनकी अनुभूतियोका मुझे इतना भरोसा है कि मैंने उन्हींपर अभिव्यक्तिका रूप निर्धारित करनेका भार भी छोड दिया है—विषय, भाषा छद शैली आदि-आदि।'[१]

हमारा कवि तो कविताको जीवनानुभूतिका गीत या चीत्कार मानता रहा है जिसमे स्वाभाविकता उसका सहज स्वाभाविक गुण है। वहाँ न तो प्रयासकी ही आवश्यकता पडती है न यह देखनेकी कि चीत्कार किस ढगसे किया जाए![२] उन्होंने शालस्वरूप राहाकी पुस्तक 'मेरा रूप तुम्हारा दर्पण' की भूमिकामें ४४ पृष्ठपर लिखा है,

---

१ आरती और अगारे—भूमिका पृष्ठ १७
२ वही—पृष्ठ १७-१८

'कवितामें भाव, भाषा और छदका अटूट सबध है। कोई छद लिया जाए तो उससे सबध भाव और उसमे ढली भाषा सहज ही आ जाती है। किसी विशेष प्रकारके भाव किन्ही विशेष प्रकारकी भाषा और छदकी अवतारणा करते हैं। "

हमारे कविने अपनी रचनाएँ छदमे, मुक्त छदमे, तुकात, अतुकात सभी रूपोमे की हैं और आजकल तो वे लोक-धुनोपर आधारित रचनाएँ भी करने लगे हैं। उनकी यह विविधता, जीवनकी विविधता-की परिचायक है। उनके शब्दोमे, " जीवन भावनाओंका सामजस्य-पूर्ण नर्तन भर नही, और न ऐसा स्थान ही जहाँपर लक्ष्य स्पष्ट दिखलायी देता है, जिसकी ओर आदमी बस अपना कदम बढाता चला जाए। बहुत-सी आपाती स्थितियोका सामना भी यहाँ करना पडता है। यदि काव्य जीवनका प्रतिबिंब है तो इसमे तुकात छद, अतुकात छद और मुक्त छद सबकी सार्थकता है। "[१] इसी भावना-को जीवनके रूपक द्वारा और स्पष्ट करते हुए हमारा कवि कहता है, तुकात छद जैसे भावनाओका नृत्य है, जिसमे चरण निश्चित लय पर उठते गिरते और तुकके समपर पहुँचकर रुक जाते हैं। अतुकात छद प्रयोजनार्थ कही जानेके समान है। "[२]

मुक्त छदके प्रति हमारे कविने अपने विचार बडे सहृदयतापूर्ण ढगमे व्यक्त किये हैं। तुकात छद और मुक्तका अतर स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, " तुकात छद जिनकी पक्तियोंमे मात्रा और लयकी समता हो और अतमे तुक हो। अतुकात छद जिनकी पक्तियोंमे मात्रा और लयकी समता तो हो, पर तुक न मिलता हो–जिसका उपयोग मैंने ' मैकबेथ ' और ' ओथेलो ' के अनुवादमे किया है। मुक्त छद, जिसकी पक्तियोंमे मात्रा और लयकी समता रूढि न बन गयी हो और न तुकपर ही आग्रह हो। "[३]

---

१. बुद्ध और नाचघर–भूमिका पृष्ठ १०
२. वही–भूमिका पृष्ठ १०
३ बुद्ध और नाचघर–भूमिका पृष्ठ ८

हमारे कविने मुक्त छदमे लय, गद्यवत् भाषा और जीवनकी ज्वलत समस्याओको स्थान देनेकी बातोका प्रतिपादन किया है–

(१) "मुक्त छदमें लिखनेवालोंका एक और भ्रम मैं दूर करना चाहूँगा कि इस प्रकारकी कविता अकेलेमें बैठकर आँखोसे पढनेके लिए है। गभीरसे गभीर कविताको स्वरसे तलाक दिला देनेकी बात मेरे मनमे नही बैठती।'[१]

(२) "अगर मुक्त छदको यह समझकर अपनाया जाए कि जीवनकी कुछ कुछ क्यो, बहुत सी एसी समस्याएँ हैं जो केवल उसके द्वारा ही मुखरित की जा सकती हैं तो उसके विकास और विविधता-की सभावनाएँ असीमित हैं।'[२]

(३) "मुक्त छदके द्वारा गद्य और काव्यकी भाषाका विपर्यय भी घटाया जा सकता है।'[३]

उपर्युक्त अवतरणोसे स्पष्ट है कि मुक्त-काव्यमे लयात्मकता, गद्यकी भाषा जैसी सरस स्वाभाविकता और जीवनकी अनुभूतियाकी प्ररणा अपेक्षित है। अनुभूतिको ही काव्यका मूल तत्व माननेके कारण उन्होंने मुक्त-काव्यमें भी जीवनकी समस्याओंकी अभिव्यक्ति पर बल दिया है और लयको स्थान देनेका कारण है उनका गीतो प्रगीतोंके प्रति रुझान जिससे सगीतात्मकताके प्रति उनका अनुराग झलकता है और वे मानते रहे हैं कि गीत प्रगीत आँखोसे पढनेकी चीज नहीं, वे तो कठका योग चाहते हैं।

कविके शब्द-चयनको देखकर भी उनकी महानताका हमें अना यास परिचय मिल जाता है। कही भी प्रयाससे कोई शब्द जोड-तोडकर बिठानेकी वृत्ति उनमे नहीं है। गीतोंकी विशषता उनके प्रसाद-गुणमे

---

१ बुद्ध और नाचघर-पृष्ठ २०
२ बुद्ध और नाचघर-भूमिका पृष्ठ १९
३ वही-भूमिका पृष्ठ १९

होती है जिनसे रस पके अगूराकी तरह टपकता रहता है और कान ही उनको ग्रहण करनेका उपयुक्त पात्र हैं। हमारा कवि मानता है कि, "शब्दोंके सबसे बडे पारखी कान हैं। आँख तो शब्दोके चिन्ह भर देखती है, पर शब्द और चिन्होमे उतना ही अतर है, जितना सगीत की लिपि (नोटेशन) और सगीतमे।"[१] वैसे तो उनकी रचनामे ओज, प्रसाद, माधुर्य तीनो गुण पाये जाते हैं परतु प्रधानता प्रसाद गुणकी ही रही है। शब्दोका मोह उन्हे नही रहा, जो सहज स्वाभाविक गतिसे बोलचालका शब्द रचनामे आ गया उसे उन्होंने रख लिया है और उन्होंने भावाभिव्यक्तिपर बल दिया है, शब्दोंके आग्रहपर नही। उनके कथनानुसार, "साहित्यके क्षेत्रकी तीव्रानुभूति वही है जो अभिव्यक्ति या तीव्रानुभूति जगानेम समर्थ हो।....काव्य-कलाकी विदग्धता अनुभूतिकी समताको बहुत बढा देगी, लेकिन अनुभूतिकी विदग्धता वक्ता और श्रोताके बीच जिन सूक्ष्म ततुओका सृजन करती है, अभिव्यजनाको जिस पूजन-अर्चन अथवा भजनका रूप देती है, वह वाणीकी विदग्धतासे सभव नही।"[२]

हमारे कविने कुछ विदेशी छदोका भी प्रयोग किया है और उनके बारेमे भी अपने विचार व्यक्त किये हैं जिनमे मुख्य अँग्रेज़ीका 'सानेट' और फारसीका 'रुबाई' छद हैं।

उनकी अनूदित रचनाओंके विषयमे कविवर सुमित्रानदन पतके ये शब्द पर्याप्त होगे, "हिंदीका सौभाग्य है कि उसे तुम-सा योग्य और विद्वान् कवि शेक्सपीयरके अनुवादके लिए मिला। बहुत ही अच्छा है।"[३] कविवर पतके ही विचार उनकी रचना 'जनगीता' के विषयमे भी रख रहा हूँ, "तुम्हारी जनगीता पढकर बडी प्रसन्नता हुई। मगलाचरण पढकर और भी आनद आया। तुम्हारी इस

---

१ त्रिभगिमा–भूमिका पृष्ठ ९
२. प्रणयपत्रिका–भूमिका पृष्ठ १०.
३. कवियोंमे सौम्य सत–कुछ पत्र–पृष्ठ ८३.

श्रुतिका बडा मूल्य (आतरिक) है। इससे लाखो करोडाको सहायता मिलेगी– भाषा भाव ससीम बडा निखार और सयम है। ... .
जनगीतामे बडा सुदर अनुवाद हुआ है गीताके मर्मस्थलोका।"[१]

हमारे कविकी हालमें ही लिखी लोकगीतोपर आधारित रचनाएँ उनके सकलन त्रिभगिमामे भी सकलित हैं। कविवर पतने उनके विषयमे लिखा है, "तुम्हारी लोकगीतोंपर आधारित रचनाएँ बडी प्यारी हैं। गभीर गीत भी अपनी स्वाभाविक गतिसे बढ रहे हैं। तुम्हें सकल्प सिद्धि प्राप्त है इसीसे भीतर बाहर दोनों ओर सक्रिय रहते हो।"[२]

---

१ कवियोम सौम्य सत–कुछ पत्र–पृष्ठ ८७–८८
२ वही–पृष्ठ १०३

समाप्त

सम्मतियाँ

"मैं लेखकको इस सुंदर पुस्तकके प्रणयनपर हार्दिक बधाई देता हूं। आशा है, इससे श्री बच्चनजीके काव्यके प्रेमी ही नहीं; हिंदीके अन्य विद्वानोंके भी उनके काव्यकी बारीकियोंको समझनेमें पर्याप्त सुविधा होगी।"

डॉ पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
रीडर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

"इस पुस्तकमें जहाँ हिंदीमें प्रथम बार सुसंगत और सुस्पष्ट रूपसे हालावादपर विशद विवेचन सम्भव हो सका है वहाँ बच्चनजीके काव्यका मर्मोद्घाटन भी पहली बार हो सका है। प्रो. दशरथ राजके रूपमें श्री बच्चनजीको सर्व प्रथम ऐसे सहृदय और सुधी समीक्षक मिले हैं जो उनके काव्यकी गहराईमें उतर सके है। आलोचनाके इस प्रयासमें वे ऐसे तत्वोंको खोज लाये हैं जो उनकी समीक्षाकी उत्कृष्टताको तो प्रकट करते ही हैं—काव्यके सुधी पाठकोंका हित-सम्पादन करने, उनको नयी दिशा प्रदान करनेमें भी समर्थ होते हैं।

विश्वम्भर 'अरुण'

कृतिका बडा मूल्य (आतरिक) है। इससे लाखो करोडोको सहायता मिलेगी– भाषा भाव सभीमे बडा निखार और सयम है। .. . ... जनगीतामे बडा सुदर अनुवाद हुआ है गीताके मर्मस्थलोका।"[१]

हमारे कविकी हालमे ही लिखी लोकगीतोपर आधारित रचनाएँ उनके सकलन त्रिभगिमामे भी सकलित हैं। कविवर पतने उनके विषयमे लिखा है, "तुम्हारी लोकगीतोपर आधारित रचनाएँ बडी प्यारी हैं। गभीर गीत भी अपनी स्वाभाविक गतिसे बढ रहे हैं। तुम्हे सकल्प सिद्धि प्राप्त है इसीसे भीतर बाहर दोनों ओर सक्रिय रहते हो।"[२]

---

१ कवियोमे सौम्य सत–कुछ पत्र–पृष्ठ ८७–८८
२ वही–पृष्ठ १०३

समाप्त
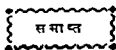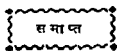
सम्मतियाँ

" मैं लेखकको इस सुंदर पुस्तकके प्रणयनपर हार्दिक बधाई देता हूँ । आशा है, इससे श्री बच्चनजीके काव्यके प्रेमी ही नहीं; हिंदीके अन्य विद्वानोंको भी उनके काव्यकी बारीकियोंको समझनेमें पर्याप्त सुविधा होगी । "

डॉ. पद्मसिंह शर्मा ' कमलेश '
रीडर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

" इस पुस्तकमें जहाँ हिंदीमें प्रथम बार सुसंगत और सुस्पष्ट रूपसे हालावादपर विशद विवेचन सम्भव हो सका है वहाँ बच्चनजीके काव्यका मर्मोद्घाटन भी पहली बार हो सका है । प्रो. दशरथ राजके रूपमें श्री बच्चनजीको सर्वप्रथम ऐसे सहृदय और सुधी समीक्षक मिले हैं जो उनके काव्यकी गहराईमें उतर सके हैं । आलोचनाके इस प्रयासमे वे ऐसे तत्त्वोको खोज लाये हैं जो उनकी समीक्षाकी उत्कृष्टताको तो प्रकट करते ही हैं—काव्यके सुधी पाठकोंका हित-सम्पादन करने, उनको नयी दिशा प्रदान करनेमें भी समर्थ होते हैं ।

[illegible] ' अरुण '